ॐ

जैन तत्त्व का नूतन निरूपण

सम्पादक और अनुवादक—

धीरजलाल के० तुरखिया

ऑ. अधिष्ठाता, जैन गुरुकुल ब्यावर.
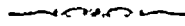
प्रकाशक—

श्री पुँगलिया सरदार जैन ग्रन्थमाला

इतवारी बाज़ार. नागपुर.

प्रथमावृत्ति
प्रति १०००

वीर संवत् २४६५
विक्रम सं० १९९५

समर्पण

आचार्य श्री होते हुए जो विनय-विभूति है ।
पूज्य श्री होते हुए जो प्रभुता से पर है ॥
शिरोमणी होते हुए जो मत के सेवक है ।
गुरुवर्य होते हुए जो शिष्य के भी शिष्य हैं ॥
ज्ञान मूर्ति होते हुए जो नम्रता की मूर्ति हैं ।
तपो मूर्ति होते हुए जो क्षमा के अवतार हैं ॥

ऐसे

परम करुणासागर, दयालुदेव, जैनाचार्य, तपोधनी, तपस्वीदेव, तपोमूर्ति

पूज्य श्री १०८ श्री देवजी ऋषिजी महाराज श्रीजी की

पुनीत सेवा में त्रिकाल वंदन !

श्रीजी के प्रभावक प्रवचन से पुनीत, पुन्य प्रभावक,

श्रावक शिरोमणी, साधुभक्त,

दानवीर श्री सरदारमलजी पुँगलिया (नागपुर) की प्रेरणा से

श्रीजी की छत्र छाया में

ग्रथित आगम-वाटिका के पुष्पों की माला स्वरूप

यह सेवक की पामर सेवा रूप लघु पुस्तिका

सविनय समर्पण

दानवीर

श्रीमान् सेठ नेमीचंदजी सरदारमलजी पुँगलिया

की

अ० सौ० धर्मप्रेमी श्रीमती मगनदेवी की तरफ से

अपनी स्वर्गीया पुत्री

श्री जमनाबाई की पुण्य स्मृति में

सादर सप्रेम भेंट ।

रुपया सवा लाख जितना दान करने वाले
दानवीर सेठ सरदारमलजी साहब पुङ्गलिया (नागपुर)

आपने श्री जैन गुरुकुल, ब्यावर को 'देवभवन' निर्माण हेतु
१८०००) रुपये की उदार भेंट सादर की है।

दानवीर श्रीमान्

सेठ श्री सरदारमलजी पुंगलिया

का

संक्षिप्त परिचय

विश्व असीम और अनादि है। उसमें अनगिनते मनुष्य प्राणी समय २ पर जन्म धारण करते रहते हैं, मगर बहुत कम को छोड़ कर अधिकांश मनुष्य प्राप्त हुए सर्वोत्कृष्ट मानव जीवन को उस जीवन की रक्षा में ही व्यतीत कर देते हैं। वे जीवन रूपी पूंजी को जरा भी नहीं बढ़ाते, बल्कि उस पूंजी का उपयोग कर के अगले जीवन को और अधिक दरिद्र बना लेते हैं। कई प्राणी अपनी दिव्य शक्तियों का उल्टा उपयोग कर के सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन को सर्व निकृष्ट जीवन बना डालते हैं। इनके जीवन का मुख्य ध्येय सांसारिक आमोद प्रमोदों को अधिक से अधिक प्राप्त करना होता है। और वे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति में ही संलग्न रहते हैं। ऐसे मनुष्यों का जीवन या तो निष्फल हो जाता है या विपरीत फलदायी सिद्ध होता है। समाज देश या संसार की उपयोगिता की दृष्टि से उनका अस्तित्व नहीं के समान है।

रखते है। ऐसे महानुभावों का जीवन धारण करना सार्थक होता है और वे प्राप्त पूञ्जी अधिक बढ़ाते हैं।

इन पंक्तियों में जिनके जीवन की रूप रेखा अङ्कित करने का प्रयत्न किया जा रहा है, वे दूसरी श्रेणी के महानुभावों में अग्रगण्य धर्मपरायण पुरुष हैं। जैन समाज में और विशेषत स्थानकवासी समाज में सेठ सरदारमलजी पुङ्गलिया से कौन अपरिचित है? सेठ साहब का अन्त करण आकाश की तरह विशाल, हिमकी भान्ति स्वच्छ और अमृत-बेल की नाईं उदार हैं। आपके विद्या प्रेम के ज्वलन्त प्रमाण स्थानकवासी सम्प्रदाय में यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होते है। ऐसे विद्यारसिक और दानवीर सज्जन का जीवन चरित्र श्रीमानों के लिये एक अच्छा आदर्श है और इसलिये उसे यहाँ अंकित करने का प्रयत्न किया गया है।

हमारे चरित्र नायक के पूर्वजों का मूल निवास स्थान बीकानेर है। बीकानेर में आपके पूर्वजों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपका परिवार वहां के उंगलियों पर गिने जाने वाले प्रतिष्ठित परिवारों में से एक था। सुनते हैं बीकानेर शहर में जब अनेक धन कुबेरों के होते हुए भी किसी के यहां भी तांगा न था, तब सबसे प्रथम आपके पूर्वजों ने तांगा लाकर मुसाफिरी की सुविधा का मार्ग सबके सामने प्रगट किया था। बीकानेर में आज भी पुगलियों का विशाल प्रासाद अपना मस्तक ऊंचा किये खड़ा है और आपके परिवार की कीर्ति का परिचय करा रहा है। परन्तु व्यापारिक कारणों से आपके पूर्वज मध्य प्रान्त के मुख्य नगर नागपुर में आ बसे और वहीं हमारे चरित्रनायकजी का जन्म हुआ। आपका जन्म दिवस भी वही है, जो श्री जैन गुरुकुल ब्यावर के अष्टम वार्षिक महोत्सव का, जिसके आप माननीय प्रमुख निर्वाचित किये गये थे। आपके पधारने की पूर्ण अभिलाषा होने पर भी, दुर्भाग्य से आपकी सुपुत्री का अवसान होजाने से नहीं पधार सके। विक्रम सम्वत् १९४४ की मार्गशीर्ष शुक्ला १० को आपने अपने पुण्य जन्म से अपने कुटुम्ब को आमोदित किया था।

आरम्भ से ही आप कुशाग्र बुद्धि थे। तत्कालीन वातावरण के अनुसार आपकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई और तदन्तर आपने अपना परम्परागत व्यवसाय में पड़ जाने पर भी अन्य क्षेत्रों से सर्वथा उदासीन न रहे और सच्चे श्रावक की भांति अपना जीवन यापन कर रहे हैं। ऐसे सच्चे जैन श्रावक का यह कर्तव्य होता है, कि वह परस्पर विरुद्ध रूप से धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थ का सेवन करे। जो इस प्रकार का अपना जीवन बना लेता है, वह क्रमशः चतुर्थ पुरुषार्थ (मोक्ष) को भी प्राप्त कर लेता है। श्री पुंगलियाजी में यह वास्तविकता भली भांति देखी जाती है। वे धनोपार्जन करते अवश्य हैं, पर कुछ संग्रह शील नहीं। दान देने में उनका हाथ कभी कुंठित नहीं होता। दीन-हीन की सेवा, समाज की विधवा बहिनों की गुप्त सहायता, शिक्षा-संस्था और साहित्य प्रकाशन के लिये दान देना आपका व्यसन सा होगया है। आप द्वारा दान दी गई रकम का ठीक ठीक पता नहीं लग सकता। आपका दान कीर्ति की कामना से नहीं, बल्कि शुद्ध कर्तव्य पालन के उद्देश्य से होता है। अतएव आप बहुतसी रकमें गुप्त रूप में ही प्रदान करते हैं। उन रकमों का पता पुंगलियाजी के समीपवर्ती उनके प्राइवेट सेक्रेटरी तक को नहीं है। ऐसी हालत में उनके दान का ठीक अन्दाज ही नहीं लगाया जा सकता।

प्रकार से सहायता पहुंचाना आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अनेकों भाइयों को आपने अपनी उदारता का परिचय दिया है। जिनके मकान न थे उन्हे मकान दान दिया। जो अर्थाभाव के कारण अपनी संतान का विवाह न कर सकते थे, उन्हे यथोचित सहायता पहुंचाई। नागपुर विश्वविद्यालय में भी आपने अच्छी रकम प्रदान की है।

आपने नामली में, सूखेड़ा में, रतलाम (नीम चौक तथा साहू वावड़ी) के दो स्थानक आदि का जीर्णोद्धार कराया तथा धर्म स्थानक के लिये नये मकान दिलाए। नागपुर इतवारी का विशाल धर्म स्थानक और व्यायामशाला बनवाने में भी आपका बडा हिस्सा है। प्रायः भारत की कोई भी जैन संस्था ऐसी न होगी, जिसमें श्री पुंगलियाजी का दान न पहुँचा हो। आपका प्रकट दान जितना ज्ञात हो सकता है उससे मालूम होता है कि आपने एक लाख रुपयों से भी अधिक दान दिया है।

साहित्य प्रकाशन के लिये आपने रुपये १००००) निकाले हैं जिसमें से "श्री सरदार ग्रंथमाला" चल रही है। इसी समय आपने अपने श्रद्धेय तपोधनी पूज्य श्री देवजी ऋषिजी के नाम से 'देव भवन' निर्माण करने के लिए श्री जैन गुरुकुल व्यावर को १८०००) रुपये की उदार रकम जाहिर की है।

आपके गुप्त दान की तो कोई गिनती ही नहीं है।

आपकी दानशीलता का प्रभाव आपके सारे कुटुम्ब पर पड़ा है। यही कारण है कि आपकी धर्मपत्नी भी दान देने में शूरा है। व्यावर गुरुकुल को दी हुई १८०००) की रकम आप ही की है। इसके अतिरिक्त वहुत सा गुप्त दान दिया है। आपकी सुपुत्री स्व० मूलीवाई ने भी रु० ५०००) धर्मार्थ प्रदान किये है। अभी ही आपने रु० १५०००) की कीमत का भवन अपनी स्व० पुत्री जमनावाई के नाम पर नागपुर श्री संघ को अर्पण किया है।

सच तो यह है कि स्थानकवासी सम्प्रदाय में आपकी कोटि के उदार

कर्त्तव्यनिष्ठ मान और सज्जन बहुत नहीं है। आपका दान विवेकयुक्त और समयानुकूल होता है। शिक्षा प्रेम आपकी नस-नस में फूट फूट कर भरा हुआ है। हमें ऐसे धर्मपरायण पुरुष रत्न पर पूर्ण गौरव है। और शासन देव से प्रार्थना है, कि यह अभिमान चिरकाल तक इसी प्रकार कायम रहे।

आपकी धर्म भावना, उदारता, सरलता, निरभिमानता, स्वधर्म सेवा एवं दानवीरता खानदेश, विरार सी० पी० आदि प्रान्तों में प्रसिद्ध है। नागपुर में मुनिवरों के चातुर्मास होने में आपकी दृढ भावना और मुनि भक्ति प्रधान है। नागपुर क्षेत्र आपकी धर्म भावना के कारण ही सविशेष प्रसिद्ध हुआ है। आप में ऐसे बाल्यवय के सुसंस्कार परम प्रतापी, तपोधनी तपस्वी देव पूज्य श्री १००८ श्री देवजी ऋषिजी म० सा० के धर्मोपदेश व परिचय से पुष्ट हुए हैं। श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी आदि सब जैन समाज आपको सम्मान दृष्टि से देखती है। आपकी लोकप्रियता नागपुर में ही नहीं, परन्तु पवनवेग से दूर दूर फैल रही है। जैन समाज में इतनी लोकप्रियता प्राप्त करने वाले बहुत कम होंगे।

— —
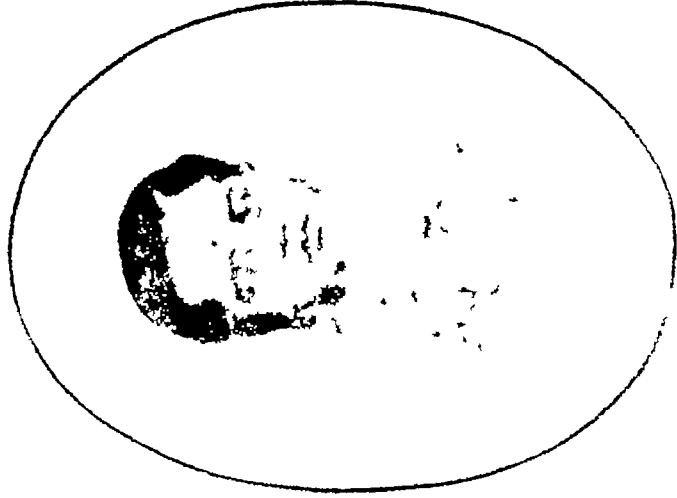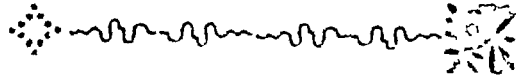
श्री० पुंगलियाजी की सुपुत्री की अमर यादगार

श्रीमान् दानवीर सेठ सरदारमलजी सा० पुंगलियाकी तरफसे
श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ (नागपुर) को भेंट
श्री जमनाबाई पुंगलिया भवन

श्री० जमनाबाई पुंगलिया भवन, नागपुर

विषय सूची

धर्म-विभाग

मार्गानुसारी-विभाग

संसार-स्वरूप

तत्त्व-विभाग

समस्त विश्व, धर्म के ऊपर ही अवलम्बित है। पशुओं मे संततिरक्षा का धर्म है पक्षी व विकलेन्द्रिय में अण्डो की रक्षा का धर्म है। जगली मनुष्यों मे कुटुम्ब रक्षा रूप धर्म है। राज्य, समाज एव जाति का नियमन भी धर्म पर निर्भर है। धर्म के अभाव से सर्व व्यवस्था नष्ट होकर मानव ससार पशु संसार से भी अधिक बदतर, क्षुद्र एव भयप्रद बनजाता है। अतएव विश्व के समस्त व्यवहार मे धर्म ही ओत प्रोत हो रहा है।

पवित्र आचार, पवित्र विचार एवं पवित्र अंतःकरण रूप त्रिवेणी के संगम होने से धर्म तीर्थ की प्राप्ति हो सकती है।

धर्म की परीक्षा

समस्त समाज के मनुष्य निज २ को धर्मात्मा कहलाने मे गौरव लेते है उन महानुभावों को निम्न प्रश्नों का विचार कर उत्तर देना चाहिये।

परोपकारिणी सस्थाएँ आपके समाज में हैं कि अन्यधर्मियों मे ?

दान का सद्गुण आप मे अधिक है कि अन्यधर्मियों मे ?

फिजूलखर्ची एवं विलास के साधनों की विपुलता आप मे है कि अन्यधर्मियों मे ?

महारम्भी यन्त्रवादी व्यापारों को उत्तेजन देने वाले आप है कि अन्य ?

हिंसक पदार्थों का व्योपार व व्यवहार आप मे विशेष है कि अन्य मे ?

वस्त्राभूषण व वाह्याडम्बर का मोह आप मे अधिक है कि अन्यमे ?

लाख रुपये का मुनाफा व घाटा आपके हृदय पर हर्ष विषाद का जो असर उपजाता है वही असर आस्तिकों को धर्म के संयोग वियोग से होता है। किन्तु वर्तमान मानव समाज ने तो विषय कषाय के साथ पाणिग्रहण कर लिया है और धर्म तत्त्व के विषय में विधूरावस्था मे है। मनुष्यों का मनुष्यत्व धर्म तत्त्व मे रहा हुआ है।

जगली प्रदेश मे जवाहिरात का मूल्य नहीं है, वैसे ही जड-वाद के जमाने मे धर्म तत्त्व का मूल्य नहीं हो सकता। मनुष्य सुख की इच्छा करते है, परंतु सुख के उपादान कारण रूप धर्म की अवहेलना करते है। कैसी आश्चर्य जनक घटना है!!

बिना स्वार्थत्याग के धर्म की आराधना कभी नहीं हो सकती। संसार मे अपना सर्वस्व देकर धर्म आराधना करने वाला सुसाध्य रोगी है। अनुकूलतानुसार धर्माराधन करने वाला कष्टसाध्य रोगी है और लोक व्यवहार से धर्म आराधना करने वाला असाध्य रोगी है।

धर्म के अभाव से मोहरूप उन्माद का रोग, राग रूप ज्वरका रोग, द्वेषरूप शूलरोग, विषयकषायरूप खुजली का रोग, ईर्षा व निंदारूप रक्तपातका रोग अज्ञान रूप अधत्व और प्रमादरूपजलो-दर रोग इत्यादिक नानाविध रोग उत्पन्न होते है।

अगर धर्म के मिष्ट फल खाने को तत्पर हो तो बीज बोने में भी तत्पर हो जाओ। धन की अपेक्षा धर्म को विशेष आदर देते रहो। धर्म के सत्यरूप समाज की सेवा करो।

'समुद्र मे रहा हुआ पत्थर ज्यों पानी से मृदु नहीं होता है वैसे आरम्भ परिग्रह मे आसक्त जीव धर्मोपदेश से मृदु नहीं होता' ऐसा श्रीस्थानाङ्ग सूत्र मे सर्वज्ञ का स्पष्ट कथन है।

लाख रुपये का मुनाफा व घाटा आपके हृदय पर हर्ष विषाद का जो असर उपजाता है वही असर आस्तिकों को धर्म के संयोग वियोग से होता है। किन्तु वर्तमान मानव समाज ने तो विषय कषाय के साथ पाणिग्रहण कर लिया है और धर्म तत्त्व के विषय में विधुरावस्था मे है। मनुष्यों का मनुष्यत्व धर्म तत्त्व मे रहा हुआ है।

जंगली प्रदेश मे जवाहिरात का मूल्य नहीं है, वैसे ही जड-वाद के जमाने मे धर्म तत्त्व का मूल्य नहीं हो सकता। मनुष्य सुख की इच्छा करते है, परंतु सुख के उपादान कारण रूप धर्म की अवहेलना करते है। कैसी आश्चर्य जनक घटना है!!

बिना स्वार्थत्याग के धर्म की आराधना कभी नहीं हो सकती। संसार मे अपना सर्वस्व देकर धर्म आराधना करने वाला सुसाध्य रोगी है। अनुकूलतानुसार धर्माराधन करने वाला कष्टसाध्य रोगी है और लोक व्यवहार से धर्म आराधना करने वाला असाध्य रोगी है।

धर्म के अभाव से मोहरूप उन्माद का रोग, राग रूप ज्वरका रोग, द्वेषरूप शूलरोग, विषयकषायरूप खुजली का रोग, ईर्षा व निंदारूप रक्तपातका रोग अज्ञान रूप अंधत्व और प्रमादरूपजलो-दर रोग इत्यादिक नानाविध रोग उत्पन्न होते है।

अगर धर्म के मिष्ट फल खाने को तत्पर हो तो बीज बोने में भी तत्पर हो जाओ। धन की अपेक्षा धर्म को विशेष आदर देते रहो। धर्म के सत्यरूप समाज की सेवा करो।

'समुद्र मे रहा हुआ पत्थर ज्यों पानी से मृदु नहीं होता है वैसे आरम्भ परिग्रह मे आसक्त जीव धर्मोपदेश से मृदु नहीं होता' ऐसा श्रीस्थानाङ्ग सूत्र मे सर्वज्ञ का स्पष्ट कथन है।

धन के अभाव से इस जीव ने रो २ कर इतने अश्रु गिराये है कि जिस अश्रुणोदधि मे खुद आप ही अनन्तपार वह गया किन्तु धर्मतत्व के लिये अमृत तुल्य एक भी अश्रुविन्दु कभी गिराया है क्या ? स्त्री पुत्र एव धन के लिये मनुष्य अश्रुपात करता है तो भी निराशा मिलती है तो जरा विचारिए, कि धर्म के लिये कितने हार्दिक अश्रुवर्षण की आवश्यकता है ? धन प्राप्ति के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है उससे क्रोडगुणा अधिक पुरुपार्थ करने से ही धर्म प्राप्ति हो सकती है। रोटी के टुकडे के लिये रात दिन अविश्रांत परिश्रम करने पर भी पूर्ण प्राप्ति नहीं होती, तो कम पुरुषार्थ से धर्म प्राप्ति कैसे हो सकती है ? नादान लडका जिस तरह खिलौने के लिए लाख रुपयों का हीरा दे देता है वैसे ही अज्ञानी जीव विषय विलास के साधनों की प्राप्ति के हेतु धर्मरूप हीरा व मानव भवरूप चिंतामणी रत्न बेच डालता है।

धन के लिये जितनी व्याकुलता है उतनी ही व्याकुलता धर्म के लिये जागृत होवे तभी धर्म की प्राप्ति होती है। धार्मिक जीवन व्यवहार मे कथानरूप होना चाहिये।

वायु वह रहा हो तो फिर पखे की कौन परवाह करे ? सिर्फ रोगी। वैसे ही सुख के अभाव से रोग के समय मे ही धर्म भावना के लिये धूमधाम मचाई जाती है।

स्वयं धर्म आराधना करे सो उत्तम।
प्रेरणा से करे सो मध्यम।
प्रेरणा से भी न करे सो अधम।

विषय कषाय की प्रवृत्ति ही धर्म से पराङ्मुख होने मे कारण भूत होती है। धर्म के अभाव मे ही मनुष्य मे पाशविकता प्रकटती

है। धर्म का नियमन काल्पनिक नहीं किन्तु शाश्वत है। धर्मस्थान यह पूर्वाचार्यों का किया हुआ अद्भुत आविष्कार है। जितने अशो में धार्मिकता का अभाव उतने ही अंशों मे पाशविकता का प्राकट्य। जितने अशों मे धर्म भावना उतने ही अशों मे चैतन्य-तत्व। पुण्यानुबंधीपुण्य के उदय से ही धर्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।

धर्म के विना पुण्य नहीं और पुण्य के बिना शाता नहीं। समस्त सुखो का धाम व सुख की जड़ धर्म और सर्व दुःखों का धाम अधर्म है।

समुद्र को पार करने के लिये नौका का आविष्कार किया गया है उसी तरह संसार समुद्र में तिरने के लिये ज्ञानी पुरुषों ने धर्म रूप प्रवहण (नाव) का आविष्कार किया है। शुद्ध हवा के अभाव से रोग बढता है वैसे ही धर्म के अभाव से आत्मा मे पापरूप रोग वढता है। निरक्षरों (अनपढ) के ज्ञान पोथी में लकीरें दिखाई देती है वैसे ही हीनपुण्य जीवों को धर्मतत्त्व निर्माल्य सा मालूम होता है।

धर्मतत्व के लिये देव भी सोच करते हैं, किन्तु अज्ञानी धर्म भावना का उपहास करते है।

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्तियाँ—व्यौपार, गुमास्ती दलाली आदि मे केवल धन कमाने का ध्येय रहता है वैसे ही मनुष्यों की समस्त प्रवृत्तियों मे धर्म का ध्येय होना चाहिए। अन्यथा विना माल के थैले (वारदान) के समान मनुष्य की निर्माल्य स्थिति समझना चाहिये। मनुष्यों के चारित्र का विकाश करने की कला उसी का

नाम धर्म। धार्मिक जीवन ही नैसर्गिक जीवन है। शेष जीवन एव निरर्थक है।

पशुगण अपने जीवन से शरमिंदा नहीं होता वैसे ही धर्म रहित मनुष्य भी अपने जीवन से नहीं शरमाते। धर्मरहित मनुष्य केवल पशु भूमि की शोभारूप है। अगर यों कहा जाय कि धर्मरहित मनुष्यों का अधिकांश भाग पशुभूमि को भी लज्जित कर रहा है तो भी अत्युक्ति न होगी। मनुष्य जितने अश से पशु कोटि मे है उतने अंशों मे वह विषयकषायकी प्रवृत्तियों से लज्जित नहीं होता। जितने अंश में पाशविकता का अभाव है उतने अश मे अपने अधर्म मय जीवन के लिये लज्जाव पश्चात्ताप है।

जड एञ्जिन मे जिस प्रकार अग्नि एव पानी की शक्ति काम कर रही है, उसी प्रकार जड शरीर मे शक्ति रूप धर्म व पुराय है धर्म को आदर देवे या नहीं किन्तु वह हमारे हर एक श्वासोच्छ्वास मे सहायक है। बिना धर्म के मनुष्य का मूल्य मांस के पिराड से अधिक नहीं है। धर्म के ही अभाव मे मांस का यह लोचा पृथ्वी पर गिर पडेगा।

धर्मतत्त्व पशुओं मे नहीं हैं। फिर भी जो मनुष्य प्राप्त शक्ति का सदुपयोग नहीं करता है वह पशु से भी निकृष्ट क्यों न कहा जाय? धर्म के शरण विना लेश मात्र भी सुख नहीं मिल सकता। धर्म कोई कटु औपधि नहीं है कि जिसका सहारा सिर्फ दु:ख मे ही लिया जावे। धर्म यह कोई आभूपण नहीं है कि जो मात्र पर्व दिनों मे ही पहिना जाय।

अधर्म राय की सवारी पधारे तव उस के निमित्त अच्छी सडक (Road) वनाई जावे उस पर मखमल विछाया जावे और

धर्मराजको अपमानित कर हड धूत किया जावे यह कैसी घोरतम अज्ञानता !! धर्मतत्त्व की अवहेलना से ही अधर्म मे प्रवेश होता है। धर्म की अश्रद्धा ही दुःख एव दारिद्र का मूल है। धर्म रहित जीवन स्व-पर उभय के लिये नितान्त भयप्रद है। हृदय हो तो विचार करो दृढ निश्चय करो कि धर्मस्थान ही हमारी रक्षा के लिये किले के सदृश है समस्त ज्ञाति समाज व देश तो एक सूत्र मे पिरोने वाला एक धर्म ही है। मानवसमाज मे से धर्मतत्त्व यदि निकल जाय तो समग्र देश के मनुष्य जंगली पशुओं से भी विशेष भयंकर हो जांय।

साम्प्रत समय का जडवादी समाज ऐसा पामर बन गया है कि धन के समान प्रत्यक्ष लाभ का अनुभव न हो तो धर्म की आराधना नहीं करता उदर निर्वाह के लिये ब्राह्मण भी कसाई के यहां दासत्व करता है। धर्म एव धर्माचार्य के स्थान पर धन एव धनाचार्यों की पूजा हो रही है। ज्ञान व क्रिया के स्थान मे सोना व चांदी मे ही धर्म माना जाता है। परन्तु स्मरण है कि, विश्व मे सुख शान्ति का आधार स्थभ केवल एक धर्म ही है। यदि धर्म का अभाव हो तो सारा ससार नष्ट हो जाय।

धर्म ध्यान पवित्र है तो धर्म करने वालों में पवित्रता आनी चाहिए। धर्म की जिज्ञासा रखने वालो को चाहिये कि वे अपने को रजकण से भी लघु समझे। जिस मे लघुता का भाव नहीं वह धर्म का अधिकारी भी नहीं। बाजार मे गरीबों के साथ ठगाई करना और धर्मस्थान मे ज्ञान ध्यान की बाते बनाना यह तो बाजारू ठगाई से भी अधिक भयकर है।

योग्य कार्य ही धर्म और अयोग्य कार्य ही अधर्म है। मनुष्य का हित करना उसमे सर्व गुणों का समावेश हो जाता है। नीति

यह नींव है और धर्म दीवार है नींव के विना दीवार नहीं टिकती।

धन के अभाव से नहीं किन्तु धर्म के अभाव से शर्मिंदा होना चाहिये। अधोगति के कारणों को नष्ट कर दे उसी का नाम धर्म धार्मिकता के लक्षण शान्त स्वभाव एव निरभिमानता है। धर्म वुद्धिग्राह्य नहीं किन्तु हृदयग्राह्य है। पवित्र विचार एवं पवित्र आचार यही धार्मिक जीवन है।

धर्म-रहित भिक्षुक।

धर्म धन के विना आत्मा अनंत काल से भिक्षुक (मँगता) बना हुआ है। अनंत काल से भीख माँगते २ पुरुषार्थ हीन और रोगी बना हुआ है। (जिस भाव रोग के सम्बन्ध मे आप पहिले पढ़ चुके हैं)। ऐसे धर्म रहित भिक्षुक महा-पुरुषों के लिये दया पात्र हैं, धर्मांध जीवों के लिए हास्यास्पद हैं और विषय-कषायी जीवों के लिए क्रीडा स्थान है।

ऐसे धर्म-हीन भिक्षुक जीव की तृष्णारूपी क्षुधा कभी शान्त नहीं होती। अतः वह सर्वथा अनाथ है। पापरूपी भूमि पर शयन करने से ऐसे भिक्षुक की हड्डियाँ व शरीर घिस गए हैं, कर्म-रूप धूलि से अति मलीन होगया है, एवं विषय-कषाय की भिक्षा सदा माँगते रहने से चौदह राज-लोक मे भटक रहा है। उसके पास भीख मांगने के लिए आयु कर्म-रूपी फूटी हण्डी है। 'स्वर्ग नहीं है, नरक नहीं है, पुण्य नहीं है' ऐसी २ मिथ्या कल्पना रूपी वालक इस भिक्षुकको सताते हैं और उससे पाप-वृत्ति करा कर नरकादि नीच गति में भेजते हैं।

शब्द, रूप, गन्ध, रस व स्पर्श आदि तुच्छ उच्छिष्टान्न इस भिक्षुक आत्मा को अधिक प्रिय है। यह भिक्षुक अपनी भिक्षा का अन्न अन्य कोई न खोस ले इस लिए सदा भयभीत एवं सावधान रहता है। वह विषय-कषाय का मलिन भोजन करने से बुद्धिहीन होगया है, जिससे सम्यक् विचार भी नहीं कर सकता। विषय-कुपथ्य भोजन से उसके शरीर मे मलरूप-कर्म सञ्चय का रोग पैदा होगया है। और उस अजीर्ण-जन्य शूल रोग की भांति नरक व तिर्यंच गति की पीडाएँ सहता है। महा-मोह निद्रा से उसके विवेक चक्षु बद होगये है। विषय कषाय के कुपथ्य भोजन से उसको चारित्ररूप पथ्य भोजन रुचिकर नहीं मालूम होता। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग व द्वेष के प्रहार से यह भिखारी पीडित हो रहा है, भान भूल गया है। ऐसी निर्माल्य दशा मे भी स्त्री, पुत्र व धन मिल जाय तो परम सन्तोष मानने की धृष्टता करता है। अपनी रक्षा के लिये दास-दासी रखता है। इसके अलावा वह भिक्षुक उपकारी ज्ञानी पुरुषों से भी सदा भय-भीत रहता है। यह सोच कर कि, शायद उनके उपदेशों से या लोक लज्जा से दानादि शुभ कार्यों मे द्रव्य व्यय न करना पडे। इस भय से सत्पुरुषों का समागम भी नहीं हो सकता। धन का भिक्षुक वह धनिक धन के वधन मे यहां तक फँस जाता है, कि स्त्री धन पुत्रादि का मोह कभी नहीं छोड़ सकता। धन का भिक्षुक धन को परमात्मा की मूर्ति मान कर स्वय धन का उपासक योगी वनकर उसकी आराधना करता है। ऐसा भिक्षुक चौदह राजलोक के कौने २ मे भिक्षा के लिए चक्कर लगा कर अष्ट कर्म रूप पाथेय (भाता) को जो कि भव रोग का मूल है, अपने भिक्षा पात्र मे भरता है। इसमे उसको परमानंद की प्राप्ति होती है। कर्म रूप पाथेय यद्यपि उसके रोगों की वृद्धि करता है तो भी अज्ञानतावश पुनः ऐसा ही करके रोग एव दुःख

का भागी बनता है। सत्य-चारित्र आदि पथ्य भोजन जो कि रोगों का नाश करने वाला है उस पर उदासीनता प्रकट करता है। माता, पिता, बन्धु, मित्र, पुत्र, पुत्री, देव, गुरु, राजा और सब परिवार एक धर्म ही है। धर्म-रूप कर्णेन्द्रिय के द्वारा तमाम शास्त्रों का अर्थ सुनना सुलभ होता है। धर्म तीनों लोकों को हस्तामलकवत् दिखाने मे समर्थ-कल्याणदर्शी नेत्रों के समान है। धर्म को रत्न-राशि की उपमा दी जाती है। अतः विश्व भर मे सर्वोत्कृष्ट स्थान केवल धर्म का ही है।

जब परोपकारी महात्मा भिक्षुक को सदुपदेश देते है तब वह पुण्यहीन पामर आत्मा विपरीत विचार करता है, कि मुनिराज अपने आत्म ध्यान से च्युत होकर मेरी इच्छा न होने पर बलात् मुझको व्याख्यानादि श्रवण करने के लिये क्यों नियम आदि कराते हैं? क्या उपदेश के द्वारा व मुझको जाल मे फँसाना चाहते हैं? ऐसे भ्रम मे पडकर वह गुरु को अपमानित करता है। इससे गुरु विशेष रूप से आत्म ध्यान में लीन हो जाते हैं। ऐसे भ्रम एवं अज्ञान को देखकर महात्माओं को महद् आश्चर्य होता है।

मानव-भव ।

ज्ञानी पुरुष समुद्र को रत्नों की निधि समझता है, किन्तु अज्ञानी उसे केवल नमक को देने वाला मानता है। इसी तरह ज्ञानी पुरुष मनुष्य जन्म को मोक्ष का साधन भूत और अज्ञानी विषय भोग का साधन भूत समझते है। देवों को भी दुर्लभ मनुष्य-भव यदि धर्म रहित है तो देवों को तो क्या? किन्तु नारकी के लिए भी अनिच्छनीय व अधम बन जाता है। पशुओं मे विषय कषायों पर अकुश रखने की शक्ति नहीं है, किन्तु मनुष्य मे है। यही मनुष्य की विशेपता है। यह विशेषता न हो तो मनुष्य पशु के समान ही है। मनुष्य अपना मस्तक ऊंचा रख के चलता है, किन्तु पशु नीचा करके। उन्नत मस्तक वाले मनुष्य का स्वभाव स्वर्ग-मोक्ष प्रद कार्य करने का है। मनुष्य देह से बढकर कोई शरीर तीन लोक मे नहीं है।

पवित्र विचारों से ब्राह्मण, आश्रितों को सहायता देने से क्षत्रिय, परोपकारार्थ धन सचय करने से वैश्य और विश्व की सेवा करने से शूद्र, ये मनुष्य समाज के चार अंग है। इसी तरह मनुष्य के शरीर मे भी परोपकार मय जीवन के सूचक चार अंग हैं, मस्तिष्क, भुजा, पेट और पैर ये चारों अवयव परोपकार मय जीवन बिताने की प्रेरणा करते हैं।

मनुष्य-देह भव-सागर से तिरने के लिए नाव के समान है। मानव-भूमि देव भूमि से भी उत्तम है। क्योंकि मनुष्य अपना भविष्य इच्छानुसार बना सकता है। यह शक्ति देवों मे तो क्या अन्य किसी भी जीव-योनि मे नहीं है। मनुष्य भव से अधिक महत्व किसी देव का भी तीन लोक मे नहीं है। अनत भवों मे की

हुई कृपि एव बोये हुये बीजों के फल प्राप्ति करने का यह समय है। अन्य योनि के अनन्त जीवों से भी मानव भव सर्वोत्कृष्ट एव प्रधान है, अतः इस भव मे कार्य भी उत्कृष्ट एवं प्रधान करने चाहिए।

उछाला हुआ पत्थर आकाश मे रहे इतनी स्थिति मनुष्य भव की, और फिर जमीन पर पत्थर के रहने की स्थिति के बराबर स्थावर व अन्य जीवायोनि की स्थिति समझनी चाहिये। मानव भूमि यह मोक्ष भूमि है। आत्मगुण के विकाश की परीक्षा देने की भूमि है। मानव भव जीव और शिव के बीच का पुल है। मानव भवरूप कल्पवृक्ष मिलने से मनोवांछित फल मिलते हैं। कोई स्वर्ग मांगते है कोई नर्क। सर्व अपनी २ योग्यता के अनुसार ही मांगते हैं। तदनुसार ही गति होती है।

धर्माराधन मनुष्य भव मे ही हो सकती है। इसके बिना जीव अनेक योनियों मे अपने पापों के फलों को भोगते हैं। बछडों को बाल्यावस्था मे माता का दूध नहीं मिलता है, युवावस्था मे जननेन्द्रिय काटी जाती है। उन्हें क्षुधा तृषा से पीडित होकर भी गाडी का भार वहन करना पडता है। उन की कोमल नाक को छेद कर उसमे नाथ डाली जाती है। जीवन पर्यंत बेचारों को असह्य मार सहनी पडती है। मृत्यु के बाद भी उनकी आंतों के रुइ धुनने के लिए तार बनाये जाते है। उनके चमड़े की अनेक चीजें बनाई जाती है, उनको कत्ल किया जाता है। इस प्रकार से अनेक प्रकार से यातनाए दी जाती हैं। तात्पर्य यह है कि अधम जीवायोनि मे उत्पन्न होने वाले जीवों को जीवन भर दुख भोगना पड़ता है। और मृत्यु के अनन्तर भी उनके शरीर के तत्वों की दुर्दशा की जाती है। बछडों के सदृश निर्दोष एव अत्युपयोगी जीवों की जब

इस प्रकार दुर्दशा की जाती है, तो पाप मय जीवन बिताने वाले मनुष्यों की दुर्दशा इससे भी अधिक होनी चाहिये यह निर्विवाद सिद्ध बात है। शान्त स्वभाव, परोपकारी जीवन एवं सद्गुणों की प्राप्ति ही मनुष्य भव मे उत्तम वस्तुएँ है। जब समुद्र मे स्थित सर्चलाइट का छोटा सा दीपक भी लाखों मनुष्यों की जान बचाता है तो मनुष्य जैसे उत्तम भव मे परमार्थ करना चाहिये। इसे स्वयं समझा जा सकता है।

मनुष्य के तीन प्रकार के कुटुम्ब होते हैं।

१. देव, गुरु, धर्म, क्षमा, नम्रता, सरलता, सन्तोष, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, दान शील, तप, भावना आदि

२. क्रोध, मान, माया, लोभ, राग. द्वेष, ईर्षा और अज्ञान आदि।

३ माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, स्त्री, सास, सुसर आदि।

पहिले का कुटुम्ब मनुष्य के हित की चिन्ता करता है। दूसरा अहित का चिंतक और तीसरा कुटुम्ब अल्पकाल के लिए मिलता है। एव अल्पकाल के लिए ही रहता है।

मृत्यु के वाद अल्प काल के लिए प्राप्त होने वाला कुटुम्ब यहीं छूट जाता है। एव दूसरे नम्बर के कुटुम्ब का बढाने मे सहायता करता है। इतना ही नहीं किन्तु पहिले नम्बर के कुटुम्ब का अज्ञान वश तीव्र विरोध करता है। मनुष्य प्रथम नम्बर के कुटुम्ब के साथ प्रेम करे तो तीसरे नम्बर का कुटुम्ब दूसरे की सहायता से उसे मार

भगाता है, एवं वापिस न आवे इस हेतु से मार २ कर उस को निःसत्व बना देता है। सहपत्नीवत् प्रथम कुटुम्ब के साथ दूसरा व तीसरा कुटुम्ब द्वेष व ईर्षा करते हैं। तीसरे नम्बर के अज्ञान कुटुम्ब का पहिले की साथ अनादि काल से वर है। दूसरे व तीसरे नम्बर वालों की आकर्षण शक्ति अधिक है अत. उनका सम्मान होता है और पहिले नम्बर के कुटुम्ब को आकर्षण रहित एव निर्धन समझ कर उसे तिरस्कृत कर भगा देते है। दूसरे नम्बर का कुटुम्ब परलोक में साथ रहता है। जीव अज्ञान के वश सुखदायी कुटुम्ब का तिरस्कार और दुःखदायी कुटुम्ब का बहुमान करता है और उसकी रक्षा व सेवा के लिये मनुष्य अपनी तमाम आयु बिता देता है।

५—मनुष्यत्व।

वकील, बैरिस्टर, सॉलीसीटर, डॉक्टर, वैद्य आदि अनेक विषयो की परीक्षाओं मे उत्तीर्ण होने वाले हजारों लोग प्रति वर्ष दिखाई देते है। परन्तु मनुष्यत्व की परीक्षा लेने देने वाला या इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला एक भी मनुष्य नजर नहीं आता। मनुष्यत्व की सच्ची शिक्षा देने वाले स्कूल, कॉलेज एव अध्यापक व पाठ्य पुस्तक आदि भी दृष्टि गोचर नहीं होतीं। समस्त परीक्षाए व पदवियों की अपेक्षा मनुष्यत्व की परीक्षा एव पदवी महान है। इस पदवी को प्राप्त करने वाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। मनुष्याकृति में घूमते फिरते करोडों मनुष्य दृष्टि गोचर होते है। किन्तु आकृति के अनुरूप हृदय वाले, मनुष्यत्व सम्पन्न—मानवता के गुणों से अलकृत प्राणियों के दर्शन अति दुर्लभ है। समस्त शिक्षाग वाचन मनन, लेखन, चिन्तन, ये सब एक मात्र मनुष्यत्व प्राप्त

करने के लिये ही है। सूर्योदय से समग्र अन्धकार का नाश होता है, इसी तरह मनुष्यत्व की प्राप्तिसे सर्व दोषों का नाश हो जाता है। मनुष्यत्व जीवन का सर्वोच्च स्थान है। मनुष्यत्व रहित जीवन नीचातिनीच पशु पक्षियों से व नारकी से भी निकृष्ट है। मनुष्यत्व की प्राप्ति होने से उसमे सब प्रकार के सद्गुणों के बीज बोये जाते है। शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा से मनुष्यत्व की रक्षा अधिक करनी चाहिये। मनुष्यत्व ही सच्ची स्वस्थ दशा है।

भिन्न २ आकृतिओं के अनेक मनुष्यों को देख २ कर अच्छा चित्रकार उनमे से सर्व सुन्दर अवयव एक ही चित्र मे अंकित करता है, इसी तरह भिन्न २ मनुष्यों के सत्गुणों का समुदाय एक ही व्यक्ति मे प्रादुर्भूत होना चाहिये।

वृक्ष की लकडी से समुद्र तिरने की नौका बनती है, वैसे ही मानव वृक्ष की सद्गुण रूप लकडी में से ससार समुद्र को पार कराने वाली जीवन नौका बनानी चाहिये।

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति रूप स्थावर जीवों का जीवन मनुष्य जीवन के लिये अति उपयोगी है तो मानवजीवन समस्त विश्व के लिये विशेपतः उपयोगी होना ही चाहिये।

पशु पक्षी अपना, अपनी सन्तान का एव अपनी ज्ञाति का श्रेय अपने सर्वस्व का भोग दे करके भी करते हैं। मनुष्य जहां तक स्वकुटुम्ब व स्वज्ञाति का श्रेय करे वहां तक तो उसको पशु जीवन के समान ही मानना चाहिए।

जिस प्रकार चन्द्र सूर्य अभेद भाव से प्रकाश देकर विश्व की सेवा कर रहे हैं उसी प्रकार मनुष्यत्व की प्राप्ति के इच्छुक मनुष्य

को चाहिये। वे समस्त विश्व की सेवा अभेद भाव से करे "वसुधैव कुटुम्बकम्" इस सूत्र को सदैव स्मरण मे रक्खें। इस विशाल भावना मे जितनी सकुचितता रहेगी, उतने अंशों में मनुष्यत्व मे भी अपूर्णता रह जायगी।

भद्रता, विनय, दया और निरभिमानता ये चारो सद्गुण मनुष्य के स्वभाव में होने चाहिये। इन सद्गुणों बिना यह अपूर्ण है। ऐसे मनुष्यों को शास्त्रकारों ने भाव से नरक तथा पशुयोनिके जीव कहे है।

६–सत्य श्रीमन्ताई

हीरे व सोने मे सच्चा खजाना नहीं है, पर सच्चा खजाना तो अपनी आत्मा मे है। जो कम से कम सम्पत्ति से सन्तोष मान ले वह बडे से भी बडा श्रीमन्त है। निर्धनता मे भी हृदय की विशालता ही सच्ची धनिक-वृत्ति है। अपना राज मुकुट अपने ही अन्तःकरण मे है। उस मुकुट को हीरे मोती के शृगार की आवश्यकता नहीं होती। ऐसा मुकुट शायद ही किसी राजा के भाग्य मे होगा। उस मुकुट का नाम है सन्तोष व चारित्र। सदाचार ही सब से बडा धन है। शरीर की सुदृढ हड्डियां हीरे से भी अधिक मूल्यवान् हैं। सदाचार, पवित्रता, नम्रता व परोपकार ये सत्य, द्रव्य है। लोभ-असन्तोष उत्तरोत्तर बढने वाला राक्षस है। चारित्र की वृद्धि से ही श्रीमताई की वृद्धि होती है। संसार के धनी मृत्यु के समय सब कुछ छोड कर मृत्यु को प्राप्त होता है।

सद्गुणों की वृद्धि एव कमी के प्रमाण मे ही श्रीमन्ताई या दीनता का नाप है। क्षमा, विनय, सरलता, सन्तोष व

सहिष्णुता, ये सद्गुण कुबेर के भण्डार से भी अधिक मूल्यवान होते हैं। सुवर्ण मोहोरों का सग्रह करने के बजाय सुवर्ण मय विचारों का संग्रह करना विशेष हितकर है। इससे शाश्वत एव सच्चे सुख की प्राप्ति होगी। धन से रहित मनुष्य दीन है, मगर जिनके पास पैसे के सिवा और कुछ भी (चरित्र) नहीं वह तो महा दीन है। गुण दृष्टि यह महान् सम्पत्ति है। दोष दृष्टि मे महान् दारिद्र बसा हुआ है। जो समस्त पृथ्वी को जीतने वाला चक्रवर्ती राजा हो जाय, किंवा समस्त जगत् की धन सम्पत्ति प्राप्त कर ले, तो भी यदि उसके पास चारित्र रूप आत्मिक लक्ष्मी न हो तो उस का धन धूल के समान है। धन रहित होने पर भी चारित्र धन का श्रीमन्त बनना चाहिये। लक्ष्मी सुवर्ण की फांसी है।

करोडों रुपयों का ढेर होने पर भी मनुष्य के कंगाल होता है। सदाचार रूप धन के सामने हीरे, मोती व माणकका मूल्य कंकर से अधिक नहीं होता। चारित्र को ही निजी सम्पति बना दो, फिर निर्धनता का स्पर्श भी न होगा। सद्गुण रूप निज सम्पत्ति को अपने हृदय की तिजोरी मे भर दो। यह चारित्र धन कभी नष्ट न होगा। यह स्वसम्पति हृदय वेंक मे जमा रखने से सूद भी सब से अधिक मिलेगा। राज मुकुट धारण करने वालों की अपेक्षा सदाचारी विशेप सत्तावान् है। उच्च कुल की अपेक्षा भी सदाचार सर्वतो भावेन उच्च है।

७–दान ।

तीर्थंकर भगवान के हृदय मे जब आत्म कल्याण की भावना जागृत होती है, तब वे ससार का मार्ग-दर्शन करने के लिये सर्व प्रथम दान देना आरंभ करते है। इस प्रकार वे मोक्ष के चार मार्ग (दान, शील, तप और भावना) मे से सर्व प्रथम दान धर्म की स्थापना करते हैं।

दान का अर्थ है तन, मन और धन को परोपकार के लिये अर्पण करना।

इस प्रकार की परोपकार वृत्ति ही "शील" है। दान के गुणों से असद्गुणों का नाश होना ही 'तप' है।

दान देने का पवित्र विचार ही 'भावना' है। इस प्रकार दान के सद्गुणों से मोक्ष मार्ग के चारों गुणों की आराधना होती है। शरीर मे घाव लगने से निकले हुये रक्त की पूर्ति स्वय हो जाती है इसी प्रकार दान देने से किसी प्रकार भी सम्पत्ति मे कमी नहीं होती। वृक्ष अपने पत्तों का त्याग करता है, तो प्रकृति उसे नूतन पल्लवों से विभूषित कर देती है। उसी प्रकार वे व्यक्ति जो धन का सदुपयोग करते है उन्हे लक्ष्मी स्वतः प्राप्त हो जाती है। अपनी धन गंगा से सर्वतोन्मुख परोपकार रूप नहरें निकाल कर संसार रूप क्षेत्र का सींचन करते है। इस उदारता से हृदय विकसित होता है और उसके अभाव से संकुचित होता है।

दान परोपकार नहीं है किन्तु आत्मोपकार है। श्रीमानों का उद्धार करने के लिये ही गरीब प्रजा का आविर्भाव होता है। उनकी सहायता से ही तुम्हारा कल्याण निश्चित है। यदि गरीब

प्रजा न हो तो तुम्हारी लक्ष्मी का सदुपयोग कैसे हो सकता है ? जो सम्पत्ति भोग विलासों मे व्यय होने वाली थी और जिससे दुर्गति मिलने वाली थी, उसी सम्पत्ति का दान देने से (दीन हीन प्रजा के लिये उपयोग मे लाने से) पुण्य बध होता है और सद्-गति की प्राप्ति होती है । आपको गरीब प्रजा की सहायता के लिए उचित क्षेत्र मिला है इसके लिये अपने आपको कृतार्थ समझिये और उस क्षेत्र मे कूद पड़िये । वर्तमान में दान का क्षेत्र इतना संकुचित हो गया है कि दानवीर कहलाने वाले अपने आप को इस नाम से ही कृतार्थ समझ लेते है । और करोड़ों की सम्पत्ति के मा-लिक होते हुए भी अपनी कीर्ति की लालसा से मात्र कुछ हजार रुपयों का दान देकर अनंत कीर्ति बटोरना चाहते हैं । यह लालसा जनित दान सम्यग् दान नहीं कहा जा सकता । जलाशय का प्रति-वद्ध जल गन्दा हो जाता है, किन्तु सतत बहने वाली सरिता का जल विशुद्ध रहता है । उसी प्रकार कृपण व्यक्ति का धन तालाब के जल के समान एव उदार व्यक्तियों का धन नदी के निर्मल जल के समान होता हैं ।

कोयले पर किसी प्रकार का रग नहीं चढ़ता । उसी प्रकार कंजूस कोयले के समान है और उदार व्यक्ति श्वेत हीरे के समान है । वह उदार व्यक्ति अपनी दान की प्रभा से चमक उठता है । दान ही सच्ची कमाई का एक साधन है और बिना जोखम का व्योपार है । जैसे कार्य का फल कार्य ही देता है वैसे ही दान स्वतः अपना बदला चुकाता है । महान पूजा की लालसा से दान करना महती नीचता है ।

परोपकार का अर्थ पर-उपकार नहीं किन्तु अपने आत्म वि-कास का सोपान (सीढी) है । पर-हित साधना ही आत्म स्वास्थ्य

है। दान स्वाभाविक होना चाहिये। उस कार्य से गुणवान होने का घमण्ड रखना यह लज्जास्पद है। तेल एवं बत्ती के नष्ट होने से ही प्रकाश का आविर्भाव और तिमिर का नाश होता है। वैसे ही धन के सद्-व्यय से (दान से) आत्मा में सत्य धर्म का प्रकाश प्रकट होता है। वर्तमान युग मे दान ही सर्व श्रेष्ठ धर्म है। कलि-युग का महा धर्म दान ही है।

गरीबों का आदर करके उनके उद्धार के लिये दान करते रहो, क्यों कि दान ही सच्चा आत्मोपकारक है। किसान अपने खेत मे धान्य बोता है, व्यापारी व्यापार मे धन लगाता है या बैंक मे जमा करता है उसमे जिस प्रकार स्वार्थ है, उसी प्रकार दान में भी अपना ही परम स्वार्थ है। दान यह अपने सद्गुणों का विकास करने की कसरत है। लाखों रुपयों का दान करना सहज है, किन्तु दान से मिलते हुए मान का दान करना मुश्किल है। योग्य क्षेत्र मे दान देकर तुम्हारा भव का पाथेय (भाता) उन दान के अधिकारियों को उठाने के लिये सुपुर्द कर दो। पर भव में वह तुम को सुरक्षित स्थिति मे निःसन्देह मिल जायगा।

पानी में डूबते हुए को शक्ति होने पर भी न बचा लेना घातकीपन है। इसी तरह संयोग मिलने पर योग्य पात्र को दान न देना भी घातकीपन है। भोग का परिणाम विनाश और दान का परिणाम अमरत्व है। अपनी समस्त समृद्धि, कलाएं व चातुर्य का सद्व्यय दान मे करना चाहिये। दाहिने हाथ से किये हुए दान का पता बांये हाथ को भी न लगाना चाहिये। दान धर्म मर्यादा-तीत है। जगत मे प्रकाश का श्रेय सूर्य को है। आत्मा में प्रकाश का श्रेय दान धर्म को है।

८—ज्ञान-दान

जिस प्रकार सूर्य मे सर्व प्रकाश समाविष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार विश्व के करोडों दानों का समावेश एक ज्ञान-दान में होता है। ज्ञान दान सूर्य-प्रकाश के समान है, इतर सभी दान दीपक के प्रकाश समान है। अन्नदान वस्त्रदान, पात्रदान, औषधदान व जीवनदान, ये सब तो कुछ दिन मास या वर्षों के लिये शान्ति देने वाले दान है, और ज्ञानदान शाश्वत सुखोंको देने वाला परमोत्तम दान है। अज्ञान के योग से वर्तमान में इस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान दान को लोग भूल गये है।

ज्ञान दान का दाता अनन्त काल के लिये आशीर्वाद को प्राप्त करता है। ज्ञानदान अनन्त काल के लिये शाश्वत-चक्षु का दान है। ज्ञानदान बडे से बडी सेवा एव सर्वोत्तम सुखों का दान है। विश्व मे स्थान २ पर ज्ञान की प्याउ एवं प्रभावना सस्थापित कर के शाश्वत सुखों की प्राप्ति करे व करावें।

कोट्यवधि पारमार्थिक संस्थाएँ (जिन में कि विश्व की तमाम सस्थाओं का समावेश किया जाय उन सर्व) से अधिक उपकारक सिर्फ एक ही ज्ञान संस्था होती है। अन्य क्षेत्रों में करोड़ रुपये का दान देने की अपेक्षा ज्ञान दान मे दी हुई एक कौड़ी भी विशेष मूल्यवान् है। २५०० वर्ष से प्रभु महावीर का शासन चल रहा है और १८५०० वर्ष पर्यंत चलता रहेगा, यह केवल ज्ञान दान का ही प्रभाव है। भगवान् ऋषभदेव व महावीर प्रभु तथा अन्य तीर्थंकर एवं ज्ञानी पुरुषों का महत्व अद्यावधि अटल एवं सुरक्षित रहा है यह ज्ञानदान का ही प्रभाव है। ज्ञानदान का प्रवाह अनन्त काल के लिये शाश्वत बह रहा है। वर्षाऋतु में प्याऊ लगाने

और सुकाल में अन्न चेत्र खोलने की अपेक्षा उष्णकाल में ग्राऊ और दुष्काल मे अन्नक्षेत्र को स्थापित करना विशेष आवश्यक है। इसी तरह वर्तमान अज्ञानांधकार मय जमाने मे ज्ञान की प्याऊ-सम्यग्ज्ञान प्रचारक संस्थाओं की परम आवश्यकता है। ज्ञान दान करने वाला तीन लोक की लक्ष्मी का दान करता है। ज्ञान प्राप्ति से तीन लोक के एव मोक्ष के सुख प्राप्त किये जा सकते है। ज्ञान दान मोक्ष दान है। ज्ञानदान मे समस्त दान समा जाते है। ज्ञानदान के मिष्ट फलों की महिमा अकथ्य है। ज्ञानदान के प्रदाता जैनशासन का उद्धारक बनता है। ज्ञान दान ही सुखों का परम निधान हैं। ज्ञानदान उत्तमोत्तम गति को प्राप्त कराता है। ज्ञान सर्वोत्कृष्ट विभूति है। ज्ञानालंकार से विभूपित व्यक्ति सारे ससार के लिये पूजनीय है। पापात्माओं का उद्धार ज्ञानदान से ही हो सकता है। ज्ञानदान स्व-पर के लिये संसार तारक जहाज है।

६—परोपकार।

आत्मिक गुण या दोपों की संख्या इस प्रकार बढती जाती है: १+१ = ११+१ = १११+१ = ११११। अतः इस विपय मे सावधान रहने की परम आवश्यकता है। दान को ग्रहण करने वाला नहीं किन्तु देने वाला कर्जदार है। क्योंकि दया, दान, धर्म एवं परोपकार वृत्ति की परीक्षा करने का अवसर उसने दिया है। अतएव उसका परम उपकार मानना चाहिये। "मैंने उस पर उपकार किया है" ऐसा विचार करना भी अपराध है। दान लेने वाले से आभार लिया प्रत्युपकार की प्रतीक्षा न करते हुए उलटा उस का आभार मानना चाहिये। "मैं किसी का श्रेय कर रहा हूं" यह विचार करना भी अभिमान है। दान के पात्रों का

पुण्य उदय होगा जब उनकी सेवा करने का अपने हृदय में भाव प्रकट होगा। अतएव अपनी सेवा की प्रधानता नहीं, किन्तु पात्र के पुण्योदय की है।

परोपकार को परोपकार मानना अहंवृत्ति है। परोपकार में ही आत्मोपकार मानने से किसी कृतघ्नी की ओर से भलाई का बुरा बदला मिलने पर भी उसके प्रति दुर्भाव न होगा।

स्वशरीर की सेवा को परोपकार मानने वाले उपहास के पात्र है। इस प्रकार से समस्त विश्व रूप शरीर की सेवा को परोपकार मानने वाले को कितना अधिक उपहास का पात्र समझना चाहिये? कुटुम्ब सेवा मे सर्वस्व का भोग देते हुए भी वह परोपकार नहीं समझा जाता तो फिर अपनी अनुकुलतानुसार सामान्यरूप से जो विश्व सेवा की जाती है उसको परोपकार किस तरह समझें?;

हम किसी की सेवा करते है उस समय उस के पुण्य हमको उसका वाहन बनाता है, उसमे परोपकार मानना भयंकर पतन है।

हम पुण्यशाली जीवों के मजदूर हैं, और निजी धन, वैभवादि को उठाने वाले मजदूर भी हम हैं। अतः समझना चाहिये कि हम पुण्यशालियों के मजदूर मात्र हैं। इससे अधिक कोई विशेषता हममे नहीं है।

रात्रि के समय 'ओस' चुपचाप वनस्पति की सेवा करता है और प्रात काल मे मनुष्य जागृत होते हैं तब अदृश्य हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक परोपकारी प्रवृत्ति गुप्त रीति से करनी चाहिये। ओसबिन्दु की गुप्तसेवा के समान आदर्श परोपकार वांछनीय है।

दान (परोपकार) कर के मौन रहे वह उत्तम।

दान करके दूसरों से कहने वाला मध्यम।

दान देने के पहले ही उसके लिए डोंडी पीटने वाला अधम।

१०–भावना।

वाणी की अपेक्षा विचार विशेष सूक्ष्म होने से शुभा-शुभ प्रेरणाओं का विशेष रूप मे प्रेरक होता है। इस लिये वचन से भी विशेष अंकुश विचारों पर रखने में सावधान रहो। वाणी, पानी के समान है और विचार वाष्प और विद्युत के समान है। वाष्प एवं विद्युत् से भी मन की शक्ति अनन्त गुण अधिक है। वाफ और बिजली सारे शहर को प्रकाश व तमाम यन्त्रों को गति देते हैं। इस तरह विचार समग्र विश्व को प्रकाश व गति देता है। वाफ और विद्युत् के ऊपर धनिकों का स्वामीत्व है, किंतु विचार के ऊपर धनी एवं निर्धनी दोनों का समान स्वामीत्व है। पत्थर के डालने से उत्पन्न हुआ समुद्र का तरंग समस्त समुद्र मे फैल जाता है, शर्दी, गर्मी और वर्षा की हवा सर्वत्र फैलती है, इसी प्रकार विचार भी तमाम विश्व मे अति सरलता एवं शीघ्रता पूर्वक फैलते हैं। अच्छे विचार स्व-पर का हित साधक एव बुरे विचार उभय को अहितकारी होता हैं। विचार सूक्ष्म शरीर है, उसकी शक्ति स्थूल शरीर से भी अधिक है। इस लिये महापुरुषों ने शत्रुओं का भी हित चिंतन करने का सदुपदेश दिया है। शुभ विचार से शुभ और अशुभ विचार से अशुभ पुद्‌गल समूह आत्मा ग्रहण करती है। किसी के लिये बुरा विचार करना यह उसके सर पर तलवार उठाने के समान अपराध (पाप) है। समस्त जीवन व्यवहार का प्रेरक एव उद्‌गम स्थान अपने अन्दर है। प्रथम विचार उठता है बाद हाथ उठते है। बुरा विचार अपनी अनेक सनति उत्पन्न करता है। और उन सब का निवास स्थान अपना शरीर होता है।

शुभ विचारों का भी अच्छा या बुरा असर अवश्य पड़ता है। अतः हर एक शुभ से शुभ विचारों को भी पवित्र रखना चाहिये।

विचारों को शब्द द्वारा व्यक्त करे या नहीं, मगर उसका प्रभाव तो अवश्य ही दूसरों पर पडता है। तुम्हारे विचारों के तरंग विश्व मे ठुकरा कर फिर तुम्हारे ही पास लौट आता है। अन्य के लिये किये हुए अच्छे या बुरे विचारों से दूसरों पर असर चाहे हो या न भी हो, पर स्वयं अपने पर तो उसका अच्छा बुरा असर अवश्य होता है।

अच्छे विचार शरीर में आरोग्य व बल को बढ़ाते है और बुरे विचार रोग व मृत्यु को। अच्छे विचारों का बदला शुभ तत्त्वों के रूप में विश्व की ओर से मिलता है और वे शुभ तत्त्व हमको दर्शनीय एव जगद्वल्लभ बनाते हैं। बुरे विचार का परिणाम इससे विपरीत होता है। प्रतिक्षण विचारों के द्वारा ही शरीर और मन की रचना होती है। अतः विचारों पर पूर्ण रूप से अंकुश होना चाहिये। अपनी वर्तमान स्थिति अपने विचारों का ही परिणाम है। बैलों के पीछे २ ज्यों गाडी खिंचाया करती है इसी तरह शुभाशुभ विचारों के पीछे २ सुख दुःख भी आया करते है। शरीर की छायावत् सुख-दुःख भी विचारों के अनुगामी हैं।

पवित्र विचार प्रभु समान हैं और अपवित्र विचार पिशाच के समान हैं। विचार का रंग मनुष्य के चारित्र पर लग जाता है। तुम विचार को भले ही भूल जाओ, किन्तु विचार तुमको भूलने वाला नहीं। उसकी नोंध शाश्वत है। अपवित्र विचार, अपवित्र कार्य के समान भयंकर है। बुरा विचार सिंह की तरह आत्मा पर उछल पड़ता है। करोडों देवों से भी पवित्र विचार की सेवा आत्मा के लिये अधिक उपयोगी है। करोडों दुश्मन दानवों से भी तुम्हारा एक अपवित्र विचार अनत काल के लिये अधिक अहित करेगा। जिस प्रकार जल के परमाणु मेघ मे एकत्रित होकर यथा

समय बरसते हैं उसी प्रकार आत्मा में विचारों के शुभा शुभ पर-माणु एकत्रित होकर स्वय अपने भाव प्रकट करते हैं। विचार अन्तःकरण मे चाहे जितने ही गहरे दबे हो तो भी अंकुर की तरह बाहर निकल आते हैं। बुरे विचार निकाल दिये जायँ तो उसके स्थान पर अच्छे विचार प्रवेश करेंगे। विचारों मे अनन्त सामर्थ्य है अतः इन्हें पवित्र रक्खे। अपने भविष्य को बनाने वाले भाव ही है। अच्छी भावना सूद सहित लाभ देती है। त्यागी, योगी, सती, वेश्या, परमार्थी और कसाई, सब अपने २ विचारों से बने है और बनते हैं। वचन और विचार दूसरो के सामने मूर्ति मन्त खडे होते हैं। निन्दा, लघुता, तिरस्कार, आदि अशुभ विचार अशुभ आकृति रूप होकर दूसरे पर असर करता है। तालाब के निकट ठंडाई के और भट्टी के निकट उष्णता के परमाणु प्रतीत होते है वैसे ही पवित्र विचार वाले के पास से पवित्र परमाणु मिलते है और अपवित्र विचार वालों से अपवित्र। माता और वेश्या दोनों स्त्री जाति होने पर भी दोनों से भिन्न प्रकार के परमाणु मिलते है। इसी प्रकार अच्छे और बुरे विचार वालों के परमाणुओं का असर होता है। अपनी विचार शक्ति का अच्छे से अच्छा उपयोग करें। अपने विचार ही अपना भविष्य बनाता है। हम ही हमारा भविष्य घड़ने वाले हैं।

११–भोग।

सर्वोत्तम पक्वान्न की विष्टा भी ग्रहण करने योग्य नहीं है वैसे ही उत्तमोत्तम भोग भी उपादेय नहीं है। क्यों कि वह अनन्त जीवों की विष्टा है। चलते समय दाहिने पैर की साथ बांया पैर उठना है वैसे भोग के साथ रोग अवश्यं भावी है। भोग भाव रोग है और वह द्रव्य रोग (बीमारी) से अधिक भयंकर है। भोग के समय भोग्य पुद्गलों का आदि अन्त विचार कर जिसको त्याग-भावना जागृत होती है वही सच्चा त्यागी है।

इद्रियों के भोग भोगना यह सांप को पकड कर उसके दांत से खाज खुजालने तुल्य है। ज्ञानियों को भोगी जीवों पर करुणा आती है, कि ये पामर जीव भोग के कटु फल नरक और निगोद को कैसे सहेंगे ? भोग से इस भव मे ही अनेक रोग होते हैं। तो परलोक मे अनन्त दुःख होना स्वाभाविक है। भोगासक्त जीव इस लोक के रोगों से डरता नहीं है। तो परलोक का भय कहाँ से रक्खे ?

भोग विलास लक्ष मस्तकधारी दृष्टि विप सर्प तुल्य है। भोगी मनुष्य मृत्यु समय पीडित और दुःखित होकर भोगों को छोड़ कर म्लान मुख से भोगों की शिक्षा भोगने परलोक मे जाता है। भोग सामग्री एकत्र करने मे ताप (कष्ट) है। भोगने मे अधिक ताप है। और फलतः परलोक में महा ताप है।

१२—रोग।

रोग काले पर्दे में छिपकर आता है, पर उसमें आत्म-जागृति के चन्द्र का प्रकाश चमकता रहता है। रोग ही समझाता है कि, संसार असार है और शरीर क्षणिक है। रोग भूतकाल की मलीनता का विशोधन है, भविष्य काल के लिये आत्मोन्नति का अरुणोदय है। रोग बड़े से बड़ी सेवा बजाता है। काश्तकारी की प्रगति के लिये खाद उपयोगी है, वैसे मानव की प्रगति के लिये रोग उपकारक है। रोग संसार स्वप्न का नाश करने वाला परमोपकारी है। संसारी जीवों को संसार कारागृह से तथा मोह से मुक्त करने रोग और दुःख लत्ता प्रहार कर चेताते हैं।

अय रोग! तुमको नमस्कार हो। तू जागृति में साधक है। हित करने वाला शत्रु भी मित्र है और अहित कर्ता मित्र भी शत्रु तुल्य है। जैसे अपने ही शरीर में उत्पन्न होने वाले रोग शत्रु तुल्य बाधक हैं और जंगल में रही हुई दवा मित्र तुल्य साधक है। सुवर्ण की शुद्धता में अग्नि आवश्यकीय है वैसे प्रगति के लिये रोग आवश्यक है। जगत् में दुःख, शोक और संताप न होते तो प्रगति भी न होती। संसार के विविध दुःख मनुष्यों को अधोगति में जाने से रोकते हैं, क्यों कि कुदरत द्वारा दुःख संताप, रोगादि होना यह आत्मोन्नति के लिये उपकारक चेतावनी है।

अपनी नहीं तो परकी दया के खातिर भी खान पान में अंकुश रखो, मिताहारी बनो, जिससे रोगी नहीं बनोगे और आपके अशुभ परमाणुओं का असर दूसरों को न होगा। यदि नरक द्वारा भी सत्य के प्रदेश में आना हुआ हो तो उसके लिये भी दृढ़ पद बनो। श्रेणिक राजा जैसे नरक से नहीं घबराते, क्यों कि वह मानी

विकाश में साधक है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी अशुभ विचार रोग है और शुभ विचार आरोग्य है।

इसी प्रकार नियम से दिव्य भोग शाता का रोग है और नारक भोग अशाता का रोग है। मकान मेंसे कचरा दूर करने के लिये बुहारी उपकारक है, वैसे ही शरीर का कचरा दूर करने के लिये रोग उपकारक है। शस्त्रों से रक्षा भी होती है और नाश भी। उपयोग करने वाला चाहिये। इसी तरह रोग के समय घभरा कर दुर्ध्यान ध्याने वाला स्वयं दुःखी हो कर दुर्गति का बन्ध करता है और आत्म-ज्ञानी सतर्क होता है, अपनी प्रगति करता है। जैसे- अनाथी मुनि, नमिराय राजर्षि।

१३–उपवास।

उपवास (अनशन) करने से जठराग्नि रोगों को भस्म करती है। ऐसा कोई भी रोग नहीं है जो उपवास द्वारा दूर न हो सके। उपवास से मगज शक्ति घटने की मान्यता गलत है। रोग के समय उपवास करने से रोग का विष जल जाता है और उपवास न करने से विप शरीर मे फैल जाता है। अधिक खानपान से होने वाली मृत्यु संख्या दुष्काल की मृत्यु संख्या से अधिक गिनी गई है। रोग यह चेतवनी है कि, शरीर मे नया खानपान का कचरा भरना वंद करके उपवास करो। उपवास के द्वारा रोगी नव्वे फी सैकडा निरोग होते है और दवाइयों से नव्वे फी सैकडा रोगियों के रोग वढ़ते हैं। दवाइयों से देह मे नये २ रोग उत्पन्न होते हैं और उपवास से रोग भस्मीभूत होते हैं। जुलाब लेने से भी शरीर मे कुछ कचरा रह जाता है, परन्तु उपवास से रोग जड मूल से नष्ट हो जाते है।

उपवास करने वाले की जबान जब स्पष्टतया स्वाद ले सकती है तब समझना चाहिए कि रोग नष्ट हो गए और आरोग्य प्राप्त हुआ। रोगी को दवाई न देकर उपवास (लंघन) कराना ही अधिक उपकारक है। रोगी के शरीर में अन्न न डालने से बिचारा रोग स्वयं नष्ट हो जाता है। हाथ, पैर, शरीर आदि को जैसे आराम दिया जाता है, वैसे ही उपवास करके जठराग्नि को भी विश्राम देना जरूरी है। प्रति दिन चलने वाले इंजिन को जैसे प्रति सप्ताह एक दिन बन्द करके साफ किया जाता है, उसी तरह उपवास भी आवश्यक-परमावश्यक है।

शरीर के घाव उपवास से भर जाते हैं। टूटी हुई हड्डियाँ संध जाती हैं। पशु पक्षी भी रोग होने पर खाना पीना छोड़ते हैं, जिस से वे बिना दवाई के शीघ्र निरोगी होते जाते हैं। सात दिन के उपवास से घात (वायु) का, दस उपवास से पित्त का, और बारह उपवास से कफ का रोग नष्ट होता है। पक्षघात (लकवा) जैसे भयंकर रोग भी उपवास से दूर होते हैं। गर्मी की मौसम में तीन दिन उपवास से जो लाभ होता है वह सरदी की मौसम में दो उपवास से हो जाता है।

अमेरिका में उपवास द्वारा रोग मिटाने के उपचार चल रहे हैं और सफल भी हुए हैं। अनेक प्रकार की दवाइयों की चिकित्सा से जो सन्तोष और सफलता नहीं मिली थी, सो उपवास चिकित्सा से मिल रही है।

१४–धर्मोपदेश

मानुषिक अशुचिमय भोगों में अज्ञानी मनुष्य इतना आसक्त (गृद्ध) हो गया है, कि स्वर्ग और मोक्ष के सुख की भी परवा नहीं करता है-तुच्छ समझता है, इस से अधिक आश्चर्य अन्य क्या हो सकता है ?

जग जीवों से वैर और शत्रुता का त्याग न कर सको तो कम से कम आप अपने स्वयं वैरी तो न बनें। मानवता की सत्य समझ सद्गुरु समागम और सत्य धर्म प्राप्ति से होती है। सन्त समागम और सत्य धर्म का संयोग मिलने से आत्मा की साक्षात् प्रतीति होती है तथापि अनात्म दशा-जड़ दशावत् जीवन जीना शोभा नहीं देता। यह तो सद्गुरु और सत्य धर्म का उपहास करने या कलंक देने समान है। यदि विचार शक्ति हैं तो सत्यासत्य को विचारे। अकल्याण कर्ता विश्व के अन्य जीवों से भी वे अधिक दयापात्र है जो सुसयोग मिलने पर भी उस की उपेक्षा करता है। पूर्व पुन्य-पुरुपार्थ से प्राप्त उत्ताम सयोगों का सदुपयोग करें। दुर्गति के दातार विपय भोगों का तिरस्कार न करके परम कल्याणकारी जिनवाणी-सद्धर्म का तिरस्कार करना-उपेक्षा करना-महद् आश्चर्य है।

दुर्गति नगरी मे-लेजाने वाले विपय और कपाय का त्याग करना चाहिए।

अज्ञानी पामर जीव सद्-गुरु को भी स्पष्ट सुना देता है कि, चाहे सो हो, पर मृत्यु के पहिले स्त्री, धन, विपय, कपायादि का त्याग मेरे से नहीं होगा। अज्ञानी जीव स्वर्ग व मोक्ष के सुखों को तृणावत् निरर्थक समझ कर उपेक्षा करता है और भोग के दुःखद

दुःखों का प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी ज्ञानी पुरुषों के वचनों का अनादर करता है. ज्ञानी के ज्ञान प्रति वैर वृत्ति पोषने के लिए विषय-भोगों को भोग कर दुर्गति को आमंत्रण देता है।

निद्राधीन जीव चाहे जैसा सुन्दर बोध या सुन्दर दृश्य पर ध्यान नहीं दे सकता, वैसे ही मोह-निद्राधीन जीव ज्ञानियों के वचन न सुनता है, न समझ सकता है। मनुष्य के धन, सुख, वैभव में नित्य प्रति वृद्धि होती है, वह कमाई मनुष्य की कुशलता या कुशाग्र बुद्धि का प्रताप से नहीं होती. परन्तु पूर्व जन्म के पुन्य प्रताप से प्राप्त होती है. अतः सुख वृद्धि का आदि बीज-धर्म तत्व-की उत्कृष्ट पुरुषार्थ से रक्षा करें। धर्म के शुभ फल साक्षात् प्रतीत होने पर भी उस का इतना अनादर किया जाय तो इससे बढ़कर अन्य क्या अन्याय हो सकता है?

पुन्य-पाप का प्रत्यक्ष स्वरूप जानते हुए अनजान, नास्तिकवत् जीवन बिताया जाय इससे विशेष लज्जा अन्य क्या हो सके"

उक्त बातों को जानकर, समझ कर, जीवन में उतार कर धर्म तत्त्व का आराधन-आचरण करना चाहिए, धर्म ही आत्म श्रेय का प्रधान पथ है।

मार्गानुसारी-विभाग

१–गुणदृष्टि

धर्म मार्ग को अनुसरने वाले में प्रथम गुण दृष्टि-गुणग्राहक वृत्ति-होना आवश्यक है। जगत् का प्रत्येक पदार्थ गुणों से भरा है। बकरी की मैंगणी मे गुलाब पुष्प की सुगन्ध के पोषक तत्त्व हैं, गोबर और कूडे कचरे के खाद में गन्ने के रस पोषक तत्त्व हैं, और कोलसे में शक्कर के तत्त्व होते हैं तो दोष कहाँ से ढूंढे ? समस्त जड तथा चैतन्य तत्त्व गुणों के निधान रूप है। वैज्ञानिकों ने पत्थर के कोलसों मे से सामान्य शक्कर से ८०० गुणी अधिक मीठी शक्कर निकाल दी है। शिल्प शास्त्री पत्थर के टुकडों मे देव-देवी, राजा-राणी की आकृतियाँ देखते हैं। मधुमक्षिका विष्टा में से शहद के तत्त्व खिंच सकती है। गुणी जनों को सर्वत्र गुण और दोषितों को सर्वत्र दोष ही दोष दिखते हैं। गुण ग्राहकता समुद्र समान है, उस में सर्व प्रकार की गुण-नदियाँ आ मिलती हैं। वह अपने गाम्भीर्य में सब को स्थान देता हैं।

आप अपने को पवित्र बनाना चाहते हों तो दूसरों को भी पवित्र माने। दूसरों को अपवित्र मानने वाला स्वयं अपवित्र है। मानव की आंतरिक गहराई मे से स्वभाव (प्रकृति) की परीक्षा विना किये बाह्य दृष्टि से उसके लिए कल्पना पाशववृत्ति है। बीमार को बीमारी के अपराध से मारना नहीं चाहिए। बीमार हालत मे उसके दोष देखे नहीं जाते, परन्तु उपचारक प्रयत्न करके उसे बीमारी मुक्त किया जाता है। बीमार हालत में उसके दोष देखे नहीं जाते, इसी तरह मानसिक बीमार (दोषी-अपराधी) उस के

दोषों के लिए दूषित समझा जाना नहीं चाहिए। शारीरिक बीमार की अपेक्षा मानसिक बीमार विशेष दयापात्र और सेवा पात्र है।

सांसारिक अज्ञान युक्त स्वार्थ, व्यवहार न रखकर अपनी खानदानी के अनुसार व्यवहार रखें। पशुओं से भिन्न उच्च प्रकार की अपनी खानदानी मनुष्य को विचारना चाहिए। गुणियों के गुणों को तो पशु भी ग्रहण करते हैं, पर दोषियों से गुण ग्रहण करना मानवता है। मनुष्य चाहे तो उल्टे प्रसंग को सुल्टा सकता है। गुण दृष्टि की ज्वाला में समस्त दोष भस्मीभूत होते हैं। दूसरों को पवित्र रूप से देखने की वृत्ति से बढ़ कर कोई दया, दान या सौभाग्य नहीं हो सकता। दूसरों में कौन २ से गुण छिपे हैं सो ढूंढक बुद्धि से ढूंढो। हम दूसरों के गुण देखेंगे तो दुनिया हम को गुणी बनाने में सहायक होगी। मानव जीवन के विकास की कुञ्जी 'गुण दृष्टि' है। दैवी और शाश्वत नियमों का अनुसरण गुण दृष्टि है और राक्षसी दुनिया का अनुसरण दोष दृष्टि।

गुण दृष्टि के अभाव से दुःख, व्याधि आदि का आक्रमण होना और दोष दृष्टि के अभाव से सुख सम्पत्ति की वृद्धि होना प्राकृतिक नियम सा है। फलतः गुण दृष्टि परमानन्दपद मोक्षपद के सम्मुख ले जाती है।

जहाँ धर्मप्रसाद है वहाँ आस्तिकता और गुण दृष्टि है और जहाँ पाप है वहाँ नास्तिकता और दोष दृष्टि होती है। गुण दृष्टि के परिणामों ही की आग में [illegible] और गुण दृष्टि रखते हैं और दोष [illegible] अनित्य और मोह दृष्टि रखते हैं। [illegible]

के खातिर भी किसी के दोष न देखें। दोषों मे से गुण देखने का प्रयत्न करना ही सत्पुरुषार्थ है। अपने दोष सुधार ने के पहिले दूसरों के दोष देखने का अपना क्या अधिकार है ? जहाँ तक हम सर्वत्र गुण नहीं देखते, वहां तक हम दोष के भण्डार हैं। सद्गुण के भण्डारी को सर्वत्र गुण ही गुण दीखे।

सब के प्रति परमात्मा समान सम्मान रखना ही सत्य शिक्षण है। शब्द रूप सेडे कुत्ते की तरफ लक्ष नहीं देकर वक्ता के आशय को देखना चाहिए। दोषी को बिना गुण का अनाथ समझ कर उसे अपने गुण देकर सनाथ बनावें, तो हम अनाथके नाथ कहे जायेंगे। हम मनुष्य, मनुष्यों में गुण न देख सकें तो अन्य किस तत्त्व में गुण देखसकेंगे ? दूसरों के दोष रूप कांटे अपने में चुभाकर निरर्थक दुःखी क्यों होना चाहिए ? विश्व की पवित्र मानव भूमि, जो कि मोक्ष भूमि है, उसमे दोष दृष्टि के बीज बोकर मोक्षभूमि को निरर्थक नर्क भूमि क्यों बनायी जाय ? किसी के विषय मे बुरा अभिप्राय बांधना अपने पैरों पर कुल्हाडा मारने समान है।

गुण दृष्टि समृद्धि है और दोषदृष्टि कंगालियत। गुणदर्शी का जीवन सुखों की माला समान है। गुण दृष्टि परमात्मा का निवास स्थान है। गुण दृष्टा के चारों ओर प्रेम-प्रवाह और दोष दृष्टा की आस पास द्वेप का प्रवाह नित्य बहता है। गुण दृष्टा चोर, कसाई और शरावी मे भी परमात्म पद की सत्ता समझ कर सम्मान रखता है। सूर्य को अपने भ्रमण मे सिवाय प्रकाश के अन्य कुछ नहीं दिखता वैसे गुणदृष्टि वाले को भ्रमण मे, अनुभव में, विचार मे, वचन मे, वर्तन मे प्रेम का प्रकाशझलकता है। गुण दृष्टि समभावी दृष्टि है और स्वर्ग तथा मोक्ष के साक्षात्कार समान है। विना गुण दृष्टि का जीवन नरक या पशु तुल्य नीच कोटिका जीवन है। पवित्र पुरुप ही गुण दृष्टि पाचन कर सकता है।

गुण दर्शी सदा प्रसन्न होता है और दोष दर्शी सदा द्वेषाग्नि से दुःखित होता है। गुण दृष्टि ही साधुता और सत्य धर्म है। गुणदृष्टि वाला आत्म पथ पर चलता है। अशक्त और दुर्बल बालक पर दया भाव से माता का प्रेम विशेष होता है, वैसे दोषी मानव को विशेष दयापात्र समझ कर उसकी विशेष दया, सेवा और सहाय्य करना चाहिए। गुणीजनों को सब सहायता करते ही हैं परन्तु दोषितों की सेवा करने मे ही महत्त्व है।

'गुण दृष्टि रक्खो और दोष दावानल को भस्म करो' यही सब शास्त्रों का सार है। गुण दृष्टि सुख का समुद्र है और दोष दृष्टि दुःख का सागर है। गुण दृष्टि का कांटा नित्य नजर के सामने रखना चाहिए। गुण दृष्टि से युक्त होने पर अनन्त जीवों से वैर विरोध मिट जाता है।

महात्माओं की पवित्रता का मूल्य पापात्मा देते हैं। पापात्माओं की कसौटी द्वारा महात्मा का मूल्य मालूम होता है। जैसे श्रीमन्तों को विलास के साधन गरीबों द्वारा मिलते हैं। वैसे ही पवित्रात्माओं को पवित्रता के साधन पापियों से प्राप्त होते हैं। इस लिए गुण दृष्टि से पवित्रात्मा पापियों का आभार मानते हैं। चोर, हिंसक और पापात्मा न होते तो साहूकार, दयालु और धर्मात्मा का भेद कैसे होता ? उनको बहुमान कौन देते ? मूल्य का महत्त्व इसी से तो है।

अपना सर्वस्व देकर दोषी की सेवा करना ही गुण दृष्टि है। सहाय्य दें, किन्तु सहार न करें। दोषी के दोष सुधार ने मे उसे सहायता दें। परंतु उसे अधिक बिगाड़ तिरस्कार न करें। प्रत्येक निराधार वस्तुओं को पृथ्वी आधार देती है, वैसे ही सबको आश्रय

देकर पृथ्वी जैसी महान् दृष्टि मानव नहीं रखे तो अन्य कौन रखेगा ? गुण दृष्टि ही आत्म-प्रगति के लिये परम सुवर्णावसर है।

हिन्दु बालक को चाहे कितना भी लालच देने पर वह किसी पशु-पक्षी का घात नहीं करेगा। जब मुसलमान का बच्चा अकारण ही चाहे कैसे भी निर्दोष प्राणी को हँसते २ मार डालेगा। कारण यही है कि, हिन्दु बालकों मे अहिंसा का तत्त्व और मुसलमान के खून मे हिंसा का तत्त्व ओत-प्रोत हैं। इसी प्रकार आर्य सदा गुण दृष्टि रखता है, क्यों कि उसकी प्रकृति में वैसे तत्त्व है, जब कि अनार्य की प्रकृति मे दोष दृष्टि के तत्त्व भरे पडे हैं। आर्यत्व का दावा करने वाले को समस्त संयोगों मे गुण दृष्टि का शरण ग्रहण करना चाहिये।

गुण ग्राहकता भवाब्धितारक नौका तुल्य है। दोष दृष्टि पत्थर की नाव तुल्य है। देवाधिदेव की पूज्यता जैसा गुण ग्राहकता का गुण है। दोप दृष्टि के मैल को अग्नि में जलाने से गुण दृष्टि प्राप्त होगी। गुण दृष्टि उदार आत्मा की लक्ष्मी, सम्पत्ति और वैभव है। गुण दृष्टि ही आत्म आराधक दृष्टि है। अन्यथा विनाशक दृष्टि है। क्रोधी को क्षमा का, मानी को विनय का, मायी (कपटी) को सरलता का और लोभी को सन्तोप का दान देना ही गुण दृष्टि है।

वृक्ष की जड मे पानी का सींचन होने से वृक्ष-पत्र, पुष्प, फलादि समस्त विभागों को पोपण मिलता है वैसे गुण दृष्टि का सिंचन करने मे आत्मामे अखिल गुण प्रकट होते है। हम जैसे बनना चाहे, बन सकते है। बिल्ली उन्हीं दांतों से अपना बच्चा और चूहे को पकडती है, एक मे प्रेम और दूसरे में द्वेप है। उसी प्रकार जीव की दृष्टि मे गुण ग्राहकता और दोप ग्राहकता हो सकती है।

सहन करने का गुण सबसे बड़ा है। वर्णमाला में सब एक २ प्रकार के अक्षर हैं जब कि 'श' तीन प्रकार के (श, ष, स) हैं। और अन्त मे 'ह' आता है, अर्थात् शह, षह, सह होता है। जिस प्रकार सह मे वर्णमाला समाप्त होती है उसी प्रकार सर्व गुण सहनशीलता में समाप्त होते हैं। सोमल, सूरिकंता, पालक, स्कंदक, कमठ और चण्ड सर्प जैसे को भी प्रभु ने उपकारक समझे तो दोष किस के देखे ? लाखों की बक्षिस मिलने से जो आनन्द होता हैं इससे अत्यधिक आनन्द गुण दृष्टि मे है। और लाखों के नुकसान मे जो खेद होता है, उससे भी अधिक खेद दोष दृष्टि मे है। अपने शरीर पर क्रोध करने से जब वह नहीं सुधर सकता है तो अन्य के ऊपर दोष दृष्टि से क्रोध करने से वह कैसे सुधर सकता है ? दोष दृष्टि से शत्रुता पैदा करने मे नुकसान है, मगर गुण दृष्टि से मित्रता प्राप्त करने में कौनसा नुकसान है ? मनुष्य अपनी भूल शायद् ही कबूल करता है। अन्य को शिक्षा देने के बजाय जिन २ के संसर्ग में अपन आवें उन २ से शिक्षाएँ ग्रहण करना चाहिये। गुण दृष्टि यह भविष्य मे महान् पुरुष होने का शुभ चिह्न है। अगर आप परोपकार अथवा धर्माराधन विशेष रूप से नहीं कर सकते हों तो सब से गुणों को ही ग्रहण करते रहो। दोष दोषी का नहीं किन्तु उसके अज्ञान का है। गुण दृष्टि वाला मनुष्य दूसरों के दोष देखने सुनने और कहने में अन्ध, बधिर व गूंगा है। पशुओं से भी मनुष्य विशेष अनुकम्पा पात्र है, क्यों कि उनमे हिताहित का ज्ञान होने पर भी तीव्र मोहोदय से ऐसे दोषों का सेवन करते हैं। दृष्टि को ऐसी निर्मल बना दो कि जिसमे अपना सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष भी नेत्र मे गिरे हुए रजकण के समान मालूम हो जाय और उसे अप्रमत्त हो शीघ्र निकाल दिया जाय।

२–लघुता ।

अपने दोषों की जांच दूसरों के दोषों की जांच के समान हो तब सर्व दोषों का नाश होता है । स्वमुख से अपनी प्रशंसा करना अथवा अन्य की ओर से अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना उसका नाम है लघुता (तुच्छवृत्ति) ।

अपनी भूल का स्वीकार करने से तुम्हारी भूलों का अभाव हो कर तुम स्वयं गुणों का भण्डार बन जाओगे । अपनी राई जितनी भूल को मेरु के समान मानो । अपने एक दोष को दूसरो के सहस्र दोपों से भी अधिक भयंकर समझो । क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी सरीखा में भी दोप पात्र हूँ ऐसी मान्यता अपने विषय मे रक्खो । भूल को स्वीकृत करने की वृत्ति बुहारी (सावरणी) के तमान है । बुहारी कचरे को निकालती है और मकान को स्वच्छ रखती है । अतः भूल के स्वीकारने मे लघुता नहीं, किन्तु आत्मा की पवित्रता ही समझनी चाहिये । निरभिमान वृत्ति किसी पर अपना स्वामित्व नहीं रखती । खुद को छोटे से छोटा मानने मे शर्म नहीं है, किन्तु सच्चा सम्मान है । अपनी भूल स्वीकार कर लघुता का स्वीकार करने में वड़ा गौरव है । लघुता करना कर्मों से लघु (हल्के) होने के समान है, मोक्षमार्ग समान है और गुरुता इच्छना कर्मों से गुरु (भारी) होकर अनन्त संसार वढ़ाने तुल्य है (शक्कर और रेत मिली हुई होने पर भी चिंटी शक्कर का स्वाद ले सकती है, पर हाथी स्वाद नहीं ले मकता । वैसे लघुवृत्ति (लाघवता) सत्य तत्त्व प्राप्त कर मकती है, तत्त्व ग्रहण कर सकती है । पर की लघुता और स्व की गुरुता कहने की भूल करने वाली जिव्हा न हो तो भी उत्तम है । जिसमे शिष्य होने की योग्यता नहीं वह गुरु होने

योग्य नहीं हो सकते। कोई भी व्यक्ति किसी के मस्तक का स्पर्श, उसके प्रति पूज्य भाव दिखाने के लिये नही करता है, अपितु उसके चरणों में अपना मस्तक झुकाता है। पैर मे लघुता होती है और वही समस्त शरीर का कार्य करता है। इसीलिये इसके प्रति पूज्य-भाव प्रदर्शित करने के लिये चरणों का उपयोग होता है। द्वितीया के चन्द्रमा की पूजा होती है। न कि पूर्णिमा के चन्द्र की। राजा अपराधी का नाक कटवाता है, पैर नहीं, क्यों कि नाक गुरुता का सूचक है और पैर लघुता का। जहाँ पर लघुता है वहीं सम्मान और गौरव है।

३—गुरुता।

वृक्ष के मूल को खुल्ले रखने से जैसे उसका पतन और विनाश होता है उसी प्रकार अपनी योग्यता एवं गुरुत्व प्रकट करने से मनुष्य का पतन होता है। वृक्ष की जड पर हजारों मन मिट्टी डाल कर उसको ढक दिया जाय तो वह प्रगति कर सकती है, उसी प्रकार मनुष्य अपनी योग्यता को अपने में ही अन्तर्भूत करता है तो उसका उत्थान एव विकास होता है। उच्च कोटि के फल अपने रस तथा तत्त्व को ढक कर रखते हैं, किन्तु नीच कोटि के फल अपने सत्व को ऊपर रखते हैं।

अपने आपको उत्तम मानने वाला अपनी उत्कृष्टता का नाश करता और कराता है। अपने मुँह अपनी बड़ाई करना अपना घोर अपमान है। गरिष्ट पदार्थ नहीं पचता है तो फिर ये गरिष्ट विशेषण कैसे पच सकें? गरिष्ट पदार्थों का अजीर्ण कितना भयंकर होगा? गरिष्ट पदार्थों को पचाने के लिये योग्यता आवश्यक होती है उसी प्रकार गरिष्ट विशेषणों को पचाने के लिये भी

योग्यता आवश्यक है। असंख्य सेवकों से सेवा लेने वाले से असंख्य आदमियो को सेवा देने वाला बड़ा है। अधिकार की आकांक्षा सब से बडा शत्रु है। मान, पूजा की इच्छा दूसरों के मस्तक पर पैर रखकर चलने के समान हैं। मान, पूजा, सत्कार-सम्मान प्राप्त करने की लालसा जैसा घाटे का अन्य कोई व्यापार नहीं है। पर लघुता और स्व-गुरुता करने वालों का जीवन मुर्दे समान सत्वहीन है।

४—निन्दा और निन्दक।

निन्दा करना पीठ का मांस खाने बराबर है, ऐसा शास्त्रकारों ने फरमाया ह। योरोप में निन्दा निषेधक सभाएँ स्थापित हो रहीं हे। निन्दा करने वाला जीवन्त मनुष्य का लोहू मांस भक्षक राक्षस है, सब से बडा पापी है। अतएव शास्त्र में "पिट्ठी मंसं न खाएज्जा" (पीठ का मांस नहीं खाना) ऐसा फरमान है। अङ्गरेजी मे भी निन्दा को Back-bite (पीठ का मांस खाना) जैसा-तिरस्कृत शब्द प्रयोग किया है। आत्म-निन्दा करना पवित्र कार्य है—प्रायश्चित का द्योतक है, आत्म-शुद्धि करने वाला है। दूसरे से अपनी निन्दा सुनकर समभाव रखना विशेषतम पवित्र कार्य है।

किसी के सामने ऐसी बात न करें कि जो बात उसके समक्ष न कही जा सके। पर निन्दक अपनी ही निन्दा करता है। निन्दक को निन्दा करने मे कुछ मिनट लगती है, किन्तु सुनने वाले का (जिसकी निन्दा की जाती है) वर्षों तक दिल दुःखता है। इससे अधिक भयकर पाप और क्या हो सकता है? दानी दूसरे की कृपणता की या क्षमा शील दूसरे के क्रोध की निन्दा करे वह पाप कृपणता व क्रोध से अधिक है। और उसके दान तथा क्षमा धर्म

का नाश होता है। निन्दा करना आत्म की आध्यात्मिक तन्दुरुस्ती नाश करना है। दूसरों की निन्दा करना अपने मुँह से अपनी अपात्रता जाहिर करना है । महत्वाकांक्षी (महामानी) ही पर निन्दा करता है। निन्दा करना अपने हृदय पटल को निन्दा रूप कैञ्ची से काटना है। निन्दा सुनने वाले और करने वाले उभय मे मलीनता आती है। दोषी के दोष से निन्दा का अपराध अधिक है। स्वदोष छिपाने और परदोष प्रकाश के लिये निन्दा की जाती है। निंदा करना ईर्षाग्नि मे जलना है। खुद जलता है और अन्य को जलाता है। किसी की निंदा न करना, उसके दोष न देखना, अभयदान देने बराबर है।

रात्रि भी दिन जैसी उपकारक है। सरदी जितनी गर्मी व गर्मी जितनी ही वर्षा उपकारक है वैसे निंदक भी प्रशसक जितना ही उपकारक है।

अपने निंदकों को आशीर्वाद दे, क्यों कि आप अपना श्रेय नहीं कर सकते उससे अधिक आपका श्रेय वे करते हैं, अपनी नुकसानी की परवा किये विना वे आप के विषय कषाय (दुर्गुणों) को रोकने के लिये रक्षकवत् है। जहां मनुष्य तुमको धिक्कारते हो, वहां प्रेम पूर्वक जाओ और उन उपकारी पुरुषों (निंदकों) की कल्याण कारी मदद द्वारा अपने अहभावों को भगाने के लिये वे जितनी उदार भाव से मदद ले (समभाव से स्व-निंदा सुनो)। निंदक का आभार मानो, क्यों कि वह तुमको अपने आत्म-गुणके दर्शन कराने अक्षय आयना दिखलाता है। जिसमे अपने आपको देखकर आत्म-सुधार किया जा सकता है। कोई तुम्हारी निंदा करके प्रसन्न हो तो अपने आपको परम भाग्यशाली समझो, कि विना परिश्रम के मै उसके सुख का सहायक बना। कई लोग तन, मन

और धन का भोग देकर अन्य जीवों को प्रसन्न रखने का परोपकार करते हैं तो यह निंदक भाई आपकी निंदा करके प्रसन्न होता है। अतः उसकी प्रसन्नता के लिये अपनी निंदा सुन लेने की उदारता व सहिष्णुता रखना चाहिये।

निंदक की निंदा को आप मान देंगे तब तो वह निंदा करेगा, अन्यथा किस के पास निंदा करेगा ? बहिरे को गाली कौन देता है ? अन्धे के पास कुचेष्टा कौन करता है ? अधिक कटु दवाई अधिक रोग का नाश करती है। वैसे अति दुष्ट प्रकृति वाला आपका अधिक हित करेगा। अतएव उसका सत्कार करे। निंदक हमारे लिये सर्चलाइट समान उपकारक है, दोषों की चटान से टकराती हुई जीवन नौका को बचाता है। निन्दक रूप सर्च लाइट न होती तो अपना विशेष पतन होता। अन्धकार होने से घर में चोर, कुत्ता आदि घुसते है, और प्रकाश होने पर सब भग जाते है, इसी तरह निन्दक की रोशनी के भय से दोष रूप चोर कुत्ते भग जाते हैं। सुवर्ण को विशुद्धि के लिये जैसे तेजाब है, वैसे आत्म-शुद्धि के लिये निंदक है। किसी से निन्दायुक्त या अपमानित शब्द सुन कर अप्रसन्न होना टेलीफोन द्वारा अशुभ समाचार सुनकर टेलीफोन को तोडना ही है। शर्दी, गर्मी और वर्षा के लिये किसी पर क्रोध नहीं किया जाता है, वैसे निन्दक के निन्दायुक्त प्रतिकूल शब्दों पर क्रोध न होना चाहिये। स्वयं अपना शरीर भी हमारी इच्छानुसार नहीं चलता तो अन्य किस पर हमारा अधिकार हो सकता है, कि वे हमारे लिये रूचिकर बोले या लिखे! निन्दा प्रति बुरा मनाने से कोई सुधार न होगा, मात्र समभाव रखने में ही श्रेय और सुख है।

———

६—वन्दक ।

अनुयायिओं की अपेक्षा टीकाकारों से विशेष लाभ मिलता है। कोई भी शत्रु से अपनी रक्षा नहीं इच्छता, किन्तु मित्रों से अपनी घात न हो और रक्षा हो ऐसा इच्छता है। शत्रु अपना थोडा समय बिगाडता है, जब कि मित्र वर्ग प्रशंसा करके अधिक समय खराब करता है। और आत्माकी घात भी विशेष प्रमाण में करता है। निन्दक और प्रशंसक दोनों हमारी आंख में धूल फैंकते हैं। निन्दक की धूल मिर्च जैसी है जो शीघ्र सावधान करती है और प्रशंसककी धूल सुवर्ण की मिट्टी समान है, सुवर्णरज का प्रहार आंख को अधिक लगता है और उससे आंख को अधिक नुकसान होता है। अतएव आत्मा के लिये निन्दक से प्रशंसक अधिक घातक है। शास्त्रकारों ने अपमान परिषह के विजेता को देश विजयी माना है और मान परिषह के विजेता को सम्पूर्ण विजयी माना है। निन्दा के प्रसगों मे समभाव रखना इतनामुश्किल नहीं जितना कि मान, पूजा और प्रशंसा के संयोगो मे। ऐसे प्रसगों मे सम-भाव का संयम रख सके वही पूर्ण विजयी है।

६–कर्तव्य प्रकाश

विश्व की समस्त हल चल मानव के सूक्ष्म विचारों के प्रत्यक्ष स्वरूप है, मनुष्य की अदृश्य-गुप्त इच्छा शक्ति के सब व्यक्त स्वरूप है। यन्त्र, शस्त्र, स्टीमर, शहर आदि दृश्यमान पदार्थ मानव की इच्छाशक्ति के व्यक्त स्वरूप है, कर्तव्य है और कर्म है।

जीवन की शुभाशुभ सब प्रवृत्तियाँ शुभ कर्म और अशुभ कर्म है। कुदरत के साम्राज्य मे उनकी शाश्वत नोंध रहती है। सुख और दुःख अपने कर्तव्यों द्वारा निमन्त्रित मिजबान हैं। मिजबान के तौर पर दोनों का सत्कार करना चाहिये। कभी जागृति न रही तो वह सुख, वैभव और विलास मे खिंच कर पतन कराता है। अपना प्राचीन इतिहास देखे तो महापुरुष सुख, सम्पति और स्तुति की अपेक्षा दुःख, विपत्ति और निन्दा (कसौटी) से ही ज्ञानी, प्रभावशील और प्रगतिशील बने हैं।

कर्मानुसार स्वभाव, स्वभावानुसार इच्छा और इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है। वर्तमान समस्त जीवों का स्वरूप राजा-रंक, सुखी-दुःखी, चिंटी और हाथी, आदि चोरासी लक्ष जीवायोनी का स्वरूप यह जीवों की अनेक जन्मों की इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। अधम और अवतारी पुरुष भी अपने पूर्व जन्मों की इच्छाओं का मूर्त स्वरूप है। सब को इच्छानुसार स्वरूप प्राप्त होता है। भूतकालीन इच्छाओं के स्वरूप वर्तमान मे और वर्तमान कालीन इच्छाओं के स्वरूप भविष्यत् मे मूर्तस्वरूप धारण करते है। जीव स्वय अपना विश्वकर्मा और विधाता है, जैसा बनना चाहे बन सकता है। वर्तमान के इष्ट अनिष्ट सयोगों के लिये ईर्षा ...न, दुःख प्रकट करना व्यर्थ है, क्योंकि भूतकाल तो भूत सा है,

वह हाथकी पकड मे नहीं आसकता। मात्र भावी जीवन रचना अपने अधिकार में है। स्वर्गीय, नारकीय, पाशविक और मानुषिक, इनमे से जो जीवन प्रिय हो उसे बनावे और वही स्थान प्राप्त करे। उपरोक्त रचनाओं मे से जिस को जो पसन्द हो वैसी रचना के लिये अहो-रात्र अविश्रान्त परिश्रम करें। फलत अपनी की हुई रचना प्राप्त होती है। अपनी इच्छा विरुद्ध मनुष्य को कुछ नहीं मिलता, इसलिये प्रत्येक कर्म करने के पहिले कर्म–अकर्म, कर्तव्य, अकर्तव्य इच्छनीय अनिच्छनीय का विचार करें और उचित आचरण करें।

कर्म करना अपनी मानसिक शक्ति का प्राकट्य करना ही है। सभी कर्मों के हेतु होते हैं। बिना हेतु कर्म नहीं हो सकता। वर्तमान में मनुष्य मान-पूजा व धन के हेतु ही कर्म किया करते है।

पाश्चात्यों की गणनानुसार १५० करोड़ मनुष्यों की संख्या है, उनमें १५० करोड आकृतियाँ ही भिन्न २ है, वैसे ही उनकी इच्छाए भी भिन्न २ है। १५० करोड़ मे से समान आकृति वाले दो पुरुष या दो स्त्रियों का मिलना (समान होना) मुश्किल है। आकृति मे साधारण समानता शायद होगी, परन्तु इच्छाओं मे तो आकाश पाताल का अन्तर रहता है। भारतीय मनुष्य कीर्ति के लिये कर्म करते है उसी तरह चीनी मनुष्य भी। किन्तु दोनों के आशय मे महान् अन्तर है। चीन के मनुष्य अपनी मृत्यु के बाद होनेवाली कीर्ति के लिये शुभ कर्म करते है, उन लोगों मे मृत्यु के बाद सम्माननीय पदवियाँ दी जाती है। यहा की अपेक्षा यह प्रणालिका अच्छी है। वर्तमान मे कई लोग राय बहादुर, दिवान बहादुर, रायसाहब आदि पदवियाँ प्राप्त करने के लिये अनेक सच्चे झूठे प्रयत्न या खटपट करते है। और उसके मिलने से हर्ष और न मिलने से खेद का परिताप सहन करते हैं। जब चीन देश में पुत्र के अच्छे कार्यों की न्द

पिता, पितामहादि को मिलती है और मृत पूर्वजों के इस प्रकार के सम्मान से चीनी लोग प्रसन्न होते हैं और अपने पूर्वजों के ऋण से मुक्त होने का वे प्रयत्न करते है।

कई लोग तो जन्म होते ही अपनी कब्र बाँधना प्रारम्भ कर देते है और निजी सम्पत्ति का अधिकांश उसमें खर्चते हैं। जीवन पर्यंत कब्र बनाया करते हैं। बडी कब्र से बडी महत्ता मानी जाती है। जिससे कि मृत्यु सन्मुख रहे और पाप कार्य से मन शंकाशील रहने पावे। इसके बजाय भारत में अपने भोग विलास के लिये बडी २ महलात, बाग बगीचे आदि बनाये जाते हैं। इनके बनाने वालों का ध्येय आजीवन विलास ही रहता है। इस प्रकार मनुष्यों की आकृति की भिन्नता के साथ ही साथ उनकी प्रवृत्तियों में भी भिन्नता का अनुभव होता है।

कई लोग असत्य अनीति एवं अन्यायमय पेशा करके उन पापों को धोने के लिये दान करते हैं, वह दान नहीं किन्तु ठगाई है। जिस प्रकार कोई चोर चोरी करके उस अपराध से छूटने के लिये सिपाही को घूस (रिश्वत) देता है, इसी प्रकार यह भी शुभ कर्म को घूस देने समान है। अव्वल तो भारत में दान की प्रथा ही कम है, उस मे भी वर्तमान मे तो सिर्फ मान सन्मान के हेतु ही दान दिया जाता है। दाता दान लेने वाले के पैरों मे पडे और सोचे, कि मेरे सद्भाग्य है कि आप सरीखे पात्र के योग से मेरी लक्ष्मी गंगा पावन होती है, अन्यथा दुर्गंधमय हो जाती। कृपा करके फिर इस सेवक को पावन करें। आज कल तो सो रुपये का दान देकर लाख रुपये के मानकी इच्छा करते है। लाख का दान करना सुलभ है, किन्तु उससे प्राप्त मान का दान देना परम दुर्लभ है। दान मे ...का नहीं है मगर बड़े मे बडी लूट (प्राप्ति) है। जिस प्रकार किसान

जमीन मे धान्य को वोते हैं सो जमीन को दान नहीं देते हैं मगर उसको लूटते है। मिट्टी, पानी, कर्दम व खात से भरी हुई जमीन मे बीज वोने से उसके फल स्वरूप एक के स्थान पर सैकडों बीज मिलते ह, तो फिर मानव समाज के उद्धारार्थ मानव भूमि मे दान के वीज वोने से वोने वालों को कितना अलभ्य लाभ होता होगा? खाली कुभ मे जब भरा हुआ कुम्भ पानी डालता है, तव वह अपनी गर्दन को झुकाता है। वृक्ष भी फल प्राप्ति होने पर नीचे झुकते हैं। उसी प्रकार दाता को भी दान लेने वाले का सम्मान करके खुद के उद्धारार्थ दान देना चाहिये। दान लेने वाला ऋणी नहीं, मगर देने वाला ऋणी है। लेने वाले के प्रताप से ही उसकी लक्ष्मी का अच्छे से अच्छा उपयोग होता है। कर्म कर्तव्य के लिये ही करना उत्तम है। स्वर्ग, सुख या सत्ता की लालसा को छोड़ कर जो पांच मिनट के लिये ही सत्कार्य कर सकता है, उसमे आत्मिक गुणों का विकास करने की सत्ता बीज रूप से रही है। किसी प्रकार की इच्छा-फल की आशा-रक्खे विना सत्कार्य करना ही आत्म सयम की शक्ति का उच्चतम स्वरूप है। बाहर के अनेक व्यापारों की अपेक्षा आत्म संयम वहुत ही उच्च शक्ति है। शुभ कार्य के फल की स्वार्थी भावना निर्मूल होने से मनुष्य विश्व भर मे प्रचण्ड शक्तिशाली बन जाता है। फलाशा की स्वार्थमय दृष्टि न रख कर स्वस्वभाव मय विशाल दृष्टि रक्खो। शत्रु है या मित्र यह विचार किये- विना उनके श्रेय के लिये तत्पर रहो। अभेद भाव से फल की आशा विना शुभ कार्य करना असिधारा सम कठिन व्रत है। यही असिधारा व्रत प्रगति के पथ में आगे वढा सकता है।

अपने बच्चे प्रति करुणा, प्रेम और स्नेह बताने वाली बिल्ली दयामूर्ति या प्रेम योगण बन नहीं सकती। उसे अपने जीवन में किंचिन्मात्र सफलता भी नहीं मिल सकती। वह प्राणीमात्र के

प्रति अपने बच्चे जैसा मातृभाव रक्खें तो दयामाता हो सके और उस का जीवन सफल हो। इसी प्रकार मनुष्य अपने कुटुम्ब, ज्ञाति स्वजन, स्नेहि के साथ स्नेह भाव रक्खे और इसी से यदि मनुष्य को दयावतार माना जाय तो अपने बच्चे पर दया करने वाली बिल्ली को भी दयावतार मानना चाहिए। शत्रु तथा मित्र प्रति अभेद भाव से सेवा करने वाला ही शुभ कर्तव्य करता है, ऐसा समझना चाहिए।

अपने पास मांगने वाला भिक्षुक हमारी उपकार बुद्धि जागृत करके हमें ऋणी बनाता है। भिक्षुक हमको उपकार करने का अवसर देता है अत उसका आभार मानना चाहिए न कि, उससे आभार मनाना या यशोगान कराना। इसमे शोभा नहीं है। भिक्षुक द्वारा दातृत्व बुद्धि रूपी सौभाग्य के लिए कृतार्थ समझें। भिक्षुक की भिक्षा-याचना मात्र श्रीमन्तो के उद्धार के लिए उपकारक है तो अनाथ, दया पात्र और ज्ञानपिपासुओं के लिए साधन समर्पण करना श्रीमन्तों के लिए कितना महदुपकारक है ? इस बात का विचार करके श्रीमन्तों को अपना कर्तव्य मे आरूढ होना चाहिए।

हमने परोपकार किया, ऐसा विचार भी अहंकार का पोषक है। परोपकार वृत्ति बढने पर अहंभाव का नाश होता हैं। जंगल मे लंगोट मात्र रखकर रहने वाला भी अहंवृत्ति रक्खे तो वह त्यागी नहीं, ससारी है। और अनासक्त भावना वाले भरत जैसे चक्रवर्ति सिंहासनारूढ होते हुए भी त्यागी है।

पवित्र विचार करना विश्व मे अमृत फैलाना है और अपवित्र विचार करना विश्व मे विष फैलाना है। दूसरों को सहाय्य करने वाला खुद को ही सहाय्य करता है, दूसरों को नहीं। ऐसा करके

वह खुद को सुशिक्षित और सस्कारी बनाता है। मात्र यह एक सवक (पाठ) सिखे तो भी बस है। अच्छे कर्मों के बदले मे अन्य ऐसे शुभ कार्य स्वभाविक होते रहे ऐसी भावना रक्खे। फल की आशा रहित बुद्धि एक अमोघ शस्त्र है। इसीसे अज्ञान का नाश होता है और उसका अपूर्व आनन्द स्वय भोग सकता है।

मक्खी घृतादि वस्तु खाने आती है, परतु उसीमे फँसकर मरती है वैसे ही मनुष्य विषय-विलास का आनन्द लूटते उसी मे फँस जाते है और दूसरो के दया-पात्र या हास्यास्पद होते है। गये लेने और लिवा गये, गये भोगने और भोगा गये, गये मालिक होने पर होगये गुलाम, गये कर्म करने पर कर्म रूप होगये, जीवन के सुख भोगने गये और स्वय भोग रूप होगये। इतना प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी जो सावधान न हो, उसे अपना वैभव-विलास के साधन बलात् छोडकर दीन मुख से चला जाना पडता है, इतना ही नहीं बलात् उसे दूर किया जाता है।

दान, उदारता और सहिष्णुता प्रकट करोगे उससे अनन्त गुणा वैभव मिलेगा। दान, उदारता और सहिष्णुता नहीं रक्खे तो भी कुदरत बलात् करायगी। सुख-विलास के साधन सदुपयोग मे लगावें, अन्यथा कुदरत गर्दन पकड़कर छाती पर बैठकर हड़प करेगी। भान न भूल कर कुछ स्याने बनो। अनिच्छा से किंचिन्मात्र छोडने मे दुःख है, परंतु स्वाधीनता (स्वेच्छा) से सर्वस्व का त्याग में परम सुख और शांति है। ऐसा कोई मानव नहीं है कि जिसका सर्वस्व कुदरत ने कभी न छीना हो।

जितना अधिक संचय किया होगा, उन अधिक सम्पत्ति को अन्त समय त्यजते हुए इतना ही अधिक मोहजन्य दुःख व क्लेष

होगा, कि हाय! यह सब मेरे से बलात् छीना जारहा है, मेरा कुछ नहीं चलता, विवश हूँ। इस अत्याचार के सामने अपील, प्रार्थना फर्याद, आक्रन्दन सुनने वाला कोई नहीं है। जिस शरीर को जीवन भर पुष्ट किया, रक्षा की, शृंगार किया, अपना ही मान कर आत्म भान भूल कर जिसके लिये अनेक पाप किये, वह भी उत्तर (दगा) दे रहा है। उठने बैठने की शक्ति नहीं रही है और शरीर भार भूत मालूम होता है। सम्पत्ति परम विपत्ति सम दिखती है। उस समय कर्तव्य विमुखता, जीवन के अत्याचार और पापों का प्रकाश नजर समक्ष आता है। पाप-फल की कल्पना कर कम्पित होता है, सर्वस्व का भोग देकर भी कुछ समय अधिक जीना चाहता है, किंतु वह अशरण, दया-पात्र, अपात्र आत्मा अपने जीवन की वही वचाने कुदरत के साम्राज्य मे-अन्य गति में-गमन करता है। इसे देखकर स्नेहिजन दो अश्रु गिराते है, कोई ताली पीटते हैं, कोई हँसते कूदते है और कुछ समय बाद भूल जाते है, याद भी नहीं करते और जैसा जन्मा ही न था वैसे उसका नाम निशां लुप्त हो जाता है।

शीघ्र वोओगे तो शीघ्र उगेगा, वैसे शीघ्र दोगे तो शीघ्र मिलेगा। अन्यथा मृत्यु समय जालमे फँसे पंक्षीवत् तड़ फडाट करना व्यर्थ होगा। स्त्री पुत्र परिवार धन और अधिकार के भड़किले सुखके लिये मनुष्य अपने जीवन की भस्म बनाता है और भास्मवत् हवा मे उड़ जाता है।

रोग के योग्य शरीर न हो वहाँ तक शरीर में रोग प्रविष्ट नहीं होते। दुःखों को आमन्त्रण बिना दिये दुःख पास में नहीं आ सकते। मुर्दा हुये विना कौए, गीधादि फाड खाने नहीं आते, ऐसे ही जीव अपने सुख दुःख का कर्ता हर्ता है। विचारने पर

मालूम पडेगा, कि जीवन मे जितनी ठोकर खाते हैं उसकी पूर्व तैयारी अपने से हुई थी, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होगा। इससे सिद्ध होता है कि, बाह्य जगत् हम पर सत्ता नहीं चला सकता, किंतु आंतर तत्त्व की सत्तानुसार-आज्ञानुसार बाह्य जगत् प्रवर्तता है। अपनी अन्तर सृष्टि पर सत्ता-अधिकार जमावे तो विश्व की कोई सत्ता हम पर नहीं चल सके।

हम अपने दोष नहीं देखते, पर अन्य के देखते हैं। यदि हम स्वयं निर्दोष हो तो ऐसे दूषित जग मे हमारा जन्म ही क्यों हो? जगत् में सब सैतान है, तो तू भी सैतान है। वरना तेरा जन्म सैतानों मे नहीं होता। दूसरों के दोष देखने की कायर (नीच) वृत्ति छोड कर दोष देखने की धीर वृत्ति से महावीर बनें।

हम ज्ञान की बातें करते हैं, पर प्रसंग आने पर शब्द रूपी कंकर तोप के गोले की तरह हमे चमका देता है और ज्ञान को भगा देता है, इससे अधिक पामरता क्या हो सके? कोई भी मूर्ख मनुष्य हमको अप्रिय शब्द कहकर हमारी ज्ञान बुद्धि को विकृत बना सके-राग द्वेष जगा सके, इससे बढकर अन्य पामरता क्या हो सके? दिवार को मुष्टि प्रहार करने वाले को ही मार लगता है, दिवार को नहीं। तो क्या हम दिवार से भी अधिक जड़ है कि छोटे कंकर से हिल जायँ-विकृत होजायँ? हम चैतन्य हैं अतः चैतन्य शक्ति को समझकर अपना कर्तव्य विचारना चाहिये, जिससे शुद्ध चेतना जागृत हो।

संसार–स्वरूप

१–संसारासक्त जीवों की मनोदशा।

कोई परोपकारी वैद्य घर घर जाकर निरोग व बीमारों की नब्ज (नाडी) देखकर सेवा भाव से अमूल्य दवाइयाँ देवें तो लोग कहेंगे कि, वैद्य अपने धन्धे की जाहिरात के लिए फिर रहा है और वैद्य की दवाई पर विश्वास कम करते हैं। वैसे ही ज्ञानी-परोपकारी पुरुष के स्थान २ विचर कर धर्मोपदेश देने को अज्ञानी जन स्वार्थ समझते हैं और उनके वचन-उपदेश-का अनादर करते हैं।

भूँड (सूअर) के पास मेवा मिष्टान्न धरने पर भी वह उसका स्वीकार नहीं करके काटने-मारने-दौडता है। उसे शंका होती है कि, यह मेरा अमृत आहार-विष्टा लैने आया है। इसी तरह ससारी जीवों को विपय कपाय, आरम्भ-परिग्रह (जो विष्टा से भी अत्यधिक मलीन है) छोड़ ने की इच्छा नहीं होती। ऐसा त्याग का उपदेश देने वालों का वे विरोध करते हैं। उनको ज्ञान, दर्शन चरित्र, दान शील-तप-भावनादि अमृत भोजन परोसने पर भी उन्हें विप भोजन समझकर अनादर करते हैं। अज्ञानी बाल जीवों को ज्ञानी के वचन पर विश्वास नहीं आता। श्रद्धा करता भी है तो अपने विपय-कपाय तथा आरम्भ-परिग्रह की रक्षा करके स्वर्ग या मोक्ष मिलता हो तो उस पर विचारकरता है। ज्ञानी के वचनों को मुँह से मिथ्या नहीं कहता, इतना उसका उपकार समझें। परन्तु वर्तन मे तो ज्ञानी के वचन हलाहल विप हो ऐसी उपेक्षा करता है।

व्याख्यान मे अनेक विषय आते हैं। विषयासक्त श्रोता जब व्याख्यान श्रवण करता है और वक्ता (ज्ञानी) जब धन की निःसारता फरमाते हैं उस वक्त उसे वसूली याद आती है। दान का उपदेश सुनते समय लेना याद आता है। ब्रह्मचर्य का उपदेश सुनते समय अपना या पुत्र-पुत्री के लग्न याद आते है। तप के उपदेश श्रवण के समय जीमणवार याद आता है। पवित्र भावना का उपदेश सुनते समय कचहरी के दाव पेच याद आते हैं। इस प्रकार उपदेश का असर किंचित् मात्र नहीं होता। भरे हुए घड़े मे पानी भरा जाय तो ऊपर से चला जाता है, वैसे ही विषय कषाय से भरे हुए हृदय पर से उपदेश बह जाता है-कोई असर नहीं होता। उसमें आत्म कल्याण के तत्त्व कैसे ठहरे? धर्म-तत्त्व में भी विषय कषाय के तत्त्व मिला कर विषमय बनाया जाता है।

सर्वस्व त्याग कर भी जो धर्मोंपदेश सुनता है, वह सुसाध्य रोगी है। अनुकूलता होने पर धर्मोंपदेश सुनता है, वह कष्ट साध्य रोगी हैं और जो मात्र लोक व्यवहार के लिए ही उपदेश सुनता है वह असाध्य रोगी है।

मीठाई खाते २ जैसे चटणी, नीम्बू, मिर्च, दाल, शाक आदि खाने की इच्छा हो जाती है, वैसे ही धर्मोंपदेश सुनते २ विषय-वासना प्रति जीव का चित्त चला जाता है। जैसे गगन विहारी चील की दृष्टि जमीन पर के सड़े मांस पर ही होती है, वैसे धर्मोंपदेश रूपी गगन विहार करने पर भी विषयासक्त जीवों की दृष्टि विषय रूप सडे मांस की ओर लगी रहती है। अपथ्य पर प्रेम करने वालों को औषधि फायदा नहीं करती, वैसे ही विषय-कषाय के प्रेमी जीवों को जिनवाणी नहीं रुचती। जैसे चोर सिपाही के समक्ष साहूकार जैसा अच्छा वर्ताव करता है और सिपाही के अभाव मे

पुनः चोरी करके भग जाने का विचारता है, वैसे ही अज्ञानी-जीव धर्म स्थानक मे धार्मिकता की सभ्यता रखता है और धर्म श्रवण के वाद धर्म स्थानक छोडते ही पुनः विषय कषाय में दौड़-धूप करता हे। रोगादि समय मे धर्म भावना का विचार करता है और रोगादि के अभाव मे पुनः विषय-कषाय में लीन होता है।

मनुष्य अपने जीवन रूप बर्तन मे सदा गुण या दोष भरते रहते हैं। वाजारू चीजें खरीद ने के लिये जैसे धन की आवश्यकता है, वैसे ही संसार मे सुख दुःख रूपी सौदा के लिए पुन्य-पाप रूपी धन की आवश्यकता है। धर्म के शरण विना आत्मा-क्षुद्र भिक्षुक है।

विषय-कपाय युक्त भिक्षुक आत्मा का उदर बडा है, अनन्त काल से उसमे विषय भोग भरने पर भी वह नहीं भरता है। विपय कपाय के योग से आत्मा वुद्धि हीन बनी है। अनन्त काल के विपय भोग के अनेक विध दु.ख भोगने पर भी सुख के लिये लेश मात्र विचार करता नहीं है। मन वचन काया के अशुभ योग धर्म एव धन के लूटेरे हैं तथापि उनका कमाऊ पुत्रवत् आदर किया जाता है। स्त्री, पुत्र धनादि आत्मा के अनादि काल के वन्धन है, तदपि उन्हे मुक्ति के कारण मानकर उन पर स्नेह किया जाता है। ऐसी मनोदशा के कारण ससारी जीव अनन्त काल से अनन्त संसार मे भवभ्रमण करते हैं।

२–दोष-दृष्टि

किसी के स्वभाव के बीच मे नहीं पडना चाहिये। अपना २ स्वभाव बदलने मे स्वय समर्थ होते हैं, दूसरे सभी चाहे कितने ही ज्ञानी हो, असमर्थ है। तो हम किसी का स्वभाव बदलने वाले कौन हैं ? किसी का दोष देखना अनधिकार चेष्टा है। कटक कंटक से ही निकल सकता है, वैसे दोषी के दोष देखने मे हम स्वयं दोषित होंगे तभी दोष का कांटा देख सकेंगे। निर्धन और रोगी का तिरस्कार नहीं किया जाता, वैसे ही गुण हीन और दोषी का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिये। किसी की टीका या निन्दा करके उसको सुधार ने की आशा कीचड से कीचड़ धोने समान है।

कोई वृक्ष मीठे फल देते हैं और कोई कडुवे-तदपि निन्दा या टीका नहीं की जाती, क्यों कि ये प्रकृति के आधीन है। वैसे ही मानव अपनी प्रकृति के आधीन है तो दोष किनके देखे ? सब अपने स्वभावाधीन है, वह अन्यथा कैसे हो सके ? फल लेते समय उसके छिलके, गुटली आदि भी साथ लेना पडता है, इसी तरह मानव के दोष रूप छिलके गुटली की उपेक्षा करके उसमे छिपे हुए गुण रूप फल को ग्रहण करना चाहिए। दोषी के दोष नहीं देखते दोष रूप फलका उत्पादक-उपादान-बीज देखना चाहिए। अपने दोष अक्षम्य और पर दोष क्षम्य समझना चाहिए। अन्य का दोष एक वक्त ढकने से पुनः वह दृष्टि गोचर नहीं होता। दोष दृष्टि अपनी ही तुच्छता है। दोषी प्रति माता पुत्रवत् प्रेम रखना चाहिए। दोष दृष्टि वाला आज दूसरों के दोष देखता है, कल मित्र-स्नेहियों के दोष देखेगा और क्रमशः यह आदत बढकर अततः उसे अखिल विश्व दोषित दिखेगा है। दोष

के कटक दृष्टि से दूर किये जांय तो विश्व नन्दनवन दिखेगा और दोप दृष्टि कंटक से शालमली वृक्ष। विष्टा के पात्र से विष्टा और अमृत के पात्र से अमृत झरता है। वैसे दोषी की दृष्टि से दोप और गुणी की दृष्टि से गुण प्रतित होते ।

मनुष्य किसी का दोप दूसरे को कहता है। दूसरा तीसरे को, तीसरा चौथे को, चौथा पाँचवे को, यों परम्परा बढ़ती जाती है और बिन्दुका सिन्धु होता है। दोप दर्शी क्रमशः बिन्दु विषको सिन्धु बना कर विश्व मे विष के परमाणु फैलाता है और गुण दर्शी विश्व मे अमृत परमाणु फैलाता है। विश्व में सुख का उपादान गुण दृष्टि तथा दुःख का उपादान दोष दृष्टि ही है।

मनुष्य को अपने हृदय का दोष दृष्टि रूप पौधा उखाड फेकना चाहिये जिससे गुण दृष्टि का पौधा बढ सकेगा। कलह प्रिय पुत्र का पक्ष लेने वाला पिता उसका अहित करता है। वैसे अपना दोप नहीं निकालते दूसरे का दोप निकालने वाला अपना अहित करता है। हम मे जहां तक सूक्ष्म दोप हों, वहां तक हमको अपना पक्ष नहीं करना चाहिये। दोप दृष्टि हिंसक दृष्टि है और गुण-दृष्टि अहिंसक दृष्टि है। दोप दृष्टि गये बिना, दया तथा अहिंसा का पालन नहीं हो सकता। वह मानव दया पालने मे असमर्थ है। ऐसा अपात्र अन्य स्थावर तथा त्रस जीवों की दया कैसे पाल सकता है ? आर्य की दृष्टि मांस व दारू मे नफरत करनी है तो परदोप दर्शन मे क्यो नफरत न करें ? दोप दृष्टि वाले का जीवन विघ्नों की माला है। प्रेम से गुण दृष्टि और दोप से द्वेप दृष्टि उत्पन्न होती है। दोप दृष्टि मे सकुचितता-भारीपन है। भारी वस्तु का स्वभाव नीचे जाने का है। गुण दृष्टि मे उदारता अर्थात् हलकापन है। उसका स्वभाव ऊंची गति में जाने का है। दोप दृष्टि का जन्म

स्वार्थ मे से होता है। वह आत्मा के महान् स्वरूप का विस्मरण कराता है। दोष दृष्टि से ईर्षा, वैर, विरोध, निंदा और अन्य पाप मय भावनाओं का जन्म होता है। दोष दृष्टि वाला परदोष दर्शन रूप बड का बीज लेकर अपने मे वट वृक्ष बनाने की क्रिया करता है। किसी का झूठा आहार नहीं खाया जाता, तो उसमे अनन्त मलीन भावना का दोष रूप आहार आत्म प्रदेश में किस प्रकार पचाया जाय ?

हमे परदोष सहिष्णु होना चाहिये। परदोष जैसे सामान्य तत्व को जो नहीं सह सकता, वह शरीर की भयंकर वेदना समभाव से कैसे सह सके ? सब के उज्ज्वल पहलू देखो। काला पहलू देखने के लिये अन्धकार में जाना पडेगा। भुंड (सुअर) की दृष्टि नन्दन वन मे भी विष्टा ढुढती है, वैसे दोष दर्शक, परमात्म स्वरूप मानव संसार के नन्दन वन मे अनन्त रमणीय मनुष्यों मे से भी दोष देखने की बुद्धि रखना है। परधन छिपाने वाला चोर है तो पर गुण रूप धन छिपाने वाला दोष दर्शी, महा चोर है।

सडे हुए खून को पीने वाली जोंक से भी दोष दर्शी अधमतम है। क्योंकि वह अनन्त दुर्गंध—अनन्त मलीन दोष रूप रस पीता है। किसी के दोष देखना अधमाधम कर्तव्य है। पर दोष न सहना बड़ी दरिद्रता, निर्धनता और दीन दशा है। और दोष सहकर गुण दृष्टि रखना सर्वोच्च श्रीमन्ताई है।

शरीर के जख्म की मनुष्य प्रेम से सेवा करता हैं तो दोषी मनुष्य क्या जख्म से भी अधिक घृणास्पद है कि, उसकी सेवा नहीं करके, तिरस्कार किया जाय ? जख्म को आराम होने तक प्रेम पूर्वक सेवा की जाती है, वैसे ही दोषी, गुणी न बनें वहां तक उसकी प्रेम पूर्वक सेवा करना चाहिये। मनुष्य के दोष नहीं

देखते उसकी अनन्त शक्ति धारक चैतन्य आत्मा को देखो। दूसरे का राई जितना दोप मेरुसम और अपना मेरु जितना दोष राई सम माना जाता है, इससे अधिक अपात्रता और पामरता अन्य क्या होसकती है? किसी का दोष देखना अपने मे दोषों को निमन्त्रण देना है। दूसरे के लिये जैसे तुच्छ विचार हम करते हैं इसका प्रतिफल स्वरूप हम दूसरे को अपने लिये हलका विचार करने की प्रेरणा करते है। ऐसा एक भी मनुष्य सर्वज्ञ की दृष्टि में नहीं है जो कि अनन्त गुण शक्ति का धारक न हो। परदोष देखने हमारी आंखे वाघ जैसी बडी वनती है और स्वदोष देखने के लिये मक्खी जैसी छोटी। स्वदोप देखनेके लिये खुर्दबिन रखना चाहिये और परदोप देखने के लिये दुर्बिन। स्वदोप दर्शक को परदोप देखने समय नहीं मिलता। नामर्द परदोप देखता है और मर्द-वीर-महावीर अपने ही दोप देखते है। सैतान छिद्र ढुढता है और सज्जन छिद्र ढांकता है। दोष दर्शी सूई का काम (छेद) करता है और गुणदर्शी उसमे गुण रूप धागा पिरोकर उस छिद्र को ढक देता है।

मानव शरीर मे रही हुई दोप दृष्टि की पाशवता दूर करे। दोप वृत्ति की पशुता का नाश कर गुण दृष्टि की मानवता आत्मा की भलाई के लिये प्रकटाना चाहिये। घर मे कुत्ता, बिल्ली जैसे पशु को भी नहीं घुसने देते, तो आत्मा में दोप-दृष्टि रूप भयंकर पशुओं को क्यों घुसाये जायँ? द्रव्य पशु का इतना तिरस्कार किया जाता है तो आत्मा में उत्पन्न होने वाली भाव पशुता का सर्वदा त्याग करना चाहिए।

किसीके दोप देखने के पहले विचारना चाहिए कि, हम भी किसी अज्ञान अवस्था मे कैसे थे। हम स्वयं इससे विशेष दोपी थे। अपने कांटे मे विश्व को नहीं तोलते हुए परमात्म पद के कांटे मे तोलना

चाहिए। हमारी दोष दृष्टि हममें तथा अन्य मे दोप उत्पन्न करती है। दोष, निन्दा, ईर्षा, वैर और दोप दृष्टि मानव का जाति स्वभाव नहीं होने से वे जीवन मे अनेक विध विष उत्पन्न करके रोगी बनाते हैं। 'करे सो भरे' के न्याय से दोष दर्शी अपना पतन करता है। दोप दर्शी के राक्षसी विचार दूसरे से भी राक्षसी परमाणु लाकर अपने मे भरता है और गुण दर्शी शांति के सन्देश से दूसरे के शांति के शुभ परमाणु अपने में भरता है। दोप दर्शी को दुगुणा नुकशान सहना पड़ता है। अपने में उत्पन्न हुए अशुभ परमाणु और दूसरे से आये हुए अशुभ परमाणु, इस प्रकार दुगुणे अशुभ परमाणु दूसरे के अहित से हमारा दुगुणा अहित करना है। न्यायगर (धूल शोधक) धूल मे से भी सोना ढूंढता है, तो उसे मिलता है। वैसे ही मनुष्य जो अनन्त ज्ञान और गुण शक्ति का धारक है, उससे जितने गुण ग्रहण करना चाहे ले सकते हैं। पात्र अपनी पात्रतानुसार योग्य स्थान लेता है। दोषी दोपों को और गुणी गुणो को ग्रहण करते हैं।

३–संसार-शराब खाना

संसार रूप मदिरा मन्दिर में पांच इद्रियां और विपय कपायों को पोपण मिलता है। इस नशे में संसारी जीव मदोन्मत दिखते हैं। कितनेक स्थावर (एकेन्द्रिय) जीव उस नशे मे इतने बेभान हैं कि किसी प्रकार की प्रवृत्ति नहीं कर सकते, न काया को हिला सकते।

बेइंद्रिय वाले जीव दिन भर ठौंस ठौंस कर शराब पिया करते हैं और अहो रात्रि दौड धूप करते हैं। वे उस मद के नशे मे न सूघ सकते हैं, न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न विचार सकते हैं। तीन इंद्रिय वाले जीव दारू की गन्ध लिया करते हैं। चार इंद्रिय वाले गन्ध लेते और मदिरा मंदिर देखते रहते हैं। इसीलिये घूमते है, उड़ते है। पांच इद्रिय वाले जीव पांचों इंद्रियों से मदिरा सेवन करते है और इतने मस्त है कि उनके मन मर गये है। (असंज्ञी-पंचेन्द्रिय) नारकीय जीव नशे में मस्त होकर परस्पर लडते हैं, झघडते है, छेदन, भेदन आदि विविध वेदना सहते है।

पशु पक्षी दारू के नशे में अपने हिता-हित का विचार नहीं कर सकते तथा माता, बहिन, पुत्री के साथ व्यभिचार करते किंचित् मात्र लज्जित नहीं होते। मुँह से चीत्कार करते रहते हैं, जल मे गोता लगाते रहते है, आकाश में उडते है, परस्पर लड-झघड कर अत्यन्त कठिन कष्ट भोगते हैं।

कई मनुष्य शराब के नशे में भान भूल कर पडे रहे है, जमीन पर लौटते रहते हैं। मल, मूत्र, लोहू, राद, हाड, मांस व वात-पित्त-कफ आदि अशुचि मे पडे रहने मे आनन्द मानते हैं, उसी का भोजन करते हैं, उसी का पान करते है, ऐसे असंख्य मानव है जिसको समूर्छिम मनुष्य कहते है।

मात्र अल्प सख्यक मनुष्य ही ऐसे है, जो शराब के नशे में नाचते कूदते है, खिल खिलाट हँसते हैं, गाते हैं, नशे में बडे २ भाषण करते है, निरर्थक घूमते फिरते है। लोहू राद, हाड़-मांस, मल-मूत्र के पुतले पुतली परस्पर चाटते हैं, स्पर्शते है, आलिंगते है, थूक भरे मुंह मे चुंबन करते है, आँख, नाक, कान को चाटते है,

मांस के टुकड़े को अमृत समझ कर चाटते हैं, ग्रहण करते हैं। समझदार को शर्म जनक वर्ताव करते हैं। असत्य, चोरी, व्यभि-चार, विषय-कषाय मय १८ पाप मय प्रवृत्ति करते हैं। नीचाति-नीच प्रवृत्ति करने मे लज्जित नहीं होते हैं। राज-पुरुषों द्वारा पकड़े जाते हैं दंडित होते हैं, सजा पाते हैं तथापि नशे से दूर नहीं होते हैं।

पुन चार प्रकार के जीव हैं, जो देव कहे जाते हैं। वे विचित्र प्रकार से नशे में चूकचूर हैं। वे नशे में अपनी आंख भी मूँदते नहीं हैं जमीन से ऊँचे चलते हैं, सारे दिन गान-तान, नाटक-चेटक करते रहते हैं, नाचते हैं, कूदते हैं, हँसते हैं, रोते हैं, नशे में चकचूर मदिरा मे मस्त होकर पारस्परिक ईर्षा व द्वेष करते हैं।

कितनेक महापुरुष शराब खाना (संसार) में रहते हुए भी लेशमात्र शराब न पीते हैं, न सूंघते हैं, न आवाज सुनते हैं, न स्पर्श भी करते हैं और सर्वथा ससारी प्रवृत्ति रहित हैं, वे साधु-मुनिराज आदि महापुरुष हैं। कई पुरुष संसार शराब खाने को छोड कर परम सुख मय निज स्थान में पहुँचे हैं, वे सिद्धात्मा। उक्त क्रम से जीव मद्य की मादक शक्ति बढ़ाता जाता है। ज्ञानी पुरुष परोपकार भावना से नशा न करने को समझाते हैं, किन्तु जिनके अणु २ मे मद्य का नशा भरा है, वे ज्ञानियों के वचन का अनादर-उपेक्षा-तिरस्कार करते हैं। संसार मद्य-शाला इतनी लम्बी चौड़ी है कि, उसका आदि और अन्त नहीं दीखता। उसमे ससारी जीव मदोन्मत्त हो कर भटक रहे हैं और अनन्त दुःख भोग रहे हैं। पुन्यशाली आत्माएँ इस मद्य-शाला के मोह से मुक्त होकर मोक्ष मन्दिर के लिए पैर उठाते हैं।

४–छः प्रकार के जीव।

संसार मे छः प्रकार के जीव हैं। उन (मानवों) को महापुरुषों ने राजा की उपमा दी है। इनके नाम-अधमाधम, अधम, विमध्यम, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम।

अधमाधम राजा का स्वरुप–

यह राजा होने पर भी परम भाग्य हीन है। उसे अपने पद का कुछ भी भान नहीं है। परलोक की बातों से वह कोषों दूर है। धर्म का सदा विरोध करता है, विषय-कषाय रूप विष का अंकुर है। वह बढकर विष वृक्ष होता है, दोष समूह का वह घर है उसमे से उदारता पराक्रम, धीरता, शांति आदि सद् गुण भग जाते हैं। वह अपने आत्म तत्त्व को शून्य समझता है। ऐसा निर्बल सत्त्व हीन राजा मानव भव की गद्दी पर बैठा है, वह पामर यह भी नहीं समझता है, कि उसे राज्य मिलता है या नहीं। उसे निज बल की मालूम नहीं है, अपनी सम्पत्ति का भान नहीं है, आत्म स्वरूप को जानता नहीं है, चोर उसका राज्य लूटता है जिसका उसे भान नहीं है। वह अज्ञानी चोर व दुश्मनों को रिश्तेदार, स्वामी, वडेरे मानता है। इससे चोर, लूटेरे-हर्ष-वधाई मना रहे है और कहते हैं कि यह वडा दयालु राजा है, जिसने उसका सब राज्य हमे दिया है और हमारे अधीन वर्तता है तथा दर्शन, चारित्र, दान, शील, तप आदि स्नेहिओं को भूल कर हमको परम स्नेहि समझता है।

चार घाती कर्म-चोर राज्य के सर्व सर्वा समझे जाते हैं। इन्द्रिय-चोर धन लूटने का स्वर्णावसर जान प्रसन्न हो रहे हैं।

कपाय चोरों को डाका डालने की मौज मिलती है। नो कषाय-लुटेरे लूट के आनन्द मे लीन है। परिषह रूप दुष्ट सताने का अच्छा अवसर देखकर खुश होते हैं। अधमाधम राजा के राज्य मे महा मोह का पहरा लग रहा है, जिससे चारित्र व धर्म के सेवकों को प्रवेश ने नहीं देता। उसकी गन्ध भी लेने से सावधानी रखता है। अधमाधम राय नपुसक (सत्वहीन) है, उसके शरीर पर विपय वासना के अनेक विध फोडे फुन्सी निकले हैं पाप रूप मेल से समस्त शरीर ढक गया है। राजा होने पर भी नौकर का और दास का दास है। नमक, मिर्च, घृत, गुड, शक्कर, सोना, चांदी आदि वेचकर अपना पेट भरता है। राज्य भ्रष्ट होजाने पर भी अपनी भ्रष्टता समझता नहीं है। ऐसा राजा पद भ्रष्ट होकर भवाटकी मे भटकता फिरता है।

अधम राजा का स्वरूप-

इह लौकिक भोगों में आसक्त, इस लोक मे सब प्रकार की पूर्णता मानने वाला, परलोककी बातों को न मानने वाला-परलोक विमुख, धर्म तत्त्वों से उदासीन, शब्द-रूप-गंध-रस-स्पर्शादि विषयों मे आसक्त, दान-शील-तप-भावनादि से उदासीन अधमराज है। वह विपय कषाय प्रति स्नेह रखता है, विषय-कषाय की समस्त आज्ञाएं उठाता है। इसे भी अपने राज्यका भान नहीं है। सम्यक् ज्ञान नहीं है, परन्तु सत्ता रूप अल्पांश है। यह अधमराज विपय-कपाय प्राबल्य के कारण आयु पूर्ण करके नरक में जाता है।

विमध्यम राजा (समदृष्टि) का स्वरूप-

इस राजा का विपय-कपाय तथा महामोह से मन्द प्रेम होता है। तदुपरांत चारित्र तरफ भी उसका लक्ष्य होता है। चारित्र राज प्रति उसका प्रेम है। इस लोक के लिए विचार करता है, वैसे पर-

लोक के लिए भी। धर्माराधन के लिए मन से भाव रखता है। दान-शील-तपादि के प्रति रुचि है। धर्म सम्मुख होने के लिए दिन रात यत्न करता है, संसार के भोगों को रोग तुल्य मानता है रोग मुक्त होने की भावना रोगी की होती है, वैसे ही यह राजा अपने जीवन को संसार रूपी कैदखाने से मुक्त करना चाहता है, यत्न करता है। कैदी बंधन युक्त होना चाहता है, वैसे ही यह विमध्यराय संसारबंधन से मुक्त होने का प्रयत्न करता है।

मध्यम राजा (श्रावक) का स्वरूप–

यह राजा भाव पूर्वक धर्माराधन करता है, संसार मे रहते हुए भी अपना लक्ष मोक्ष सम्मुख रखता है। विपय के कटुक फल जानकर उसको घटाने मे नित्य प्रयत्न शील रहता है। यथाशक्ति धर्माराधन करता है। संसार को असार समझ कर उसके त्याग की अहोरात्र भावना करता है।

उत्तमराय (मुनिराय) का स्वरूप–

यह राजा अपने राज्य और सामर्थ्य को समझता है, अपने गुण दोपों को समझता है। मोह के सैन्य को तथा विपय कपाय को मार भगाता है। ससार का त्याग करके आत्मराज्य के शासन मे लीन रहता है। मोह जाल को बिखेर देता है, विपय रूप घट को फोड देता है, राग-द्वेप का पराभव करता है, स्नेह पाश को तोड़ देता है, क्रोधाग्नि को शान्त करता है, मान पर्वत को चूर देता है, मान वेली को उखाड़ देता है और लोभ समुद्र को तैर जाता है।

उत्तमोत्तम राय (तीर्थंकर) का स्वरूप–

यह राज राजेश्वर स्वय ज्ञानी, सिद्धांतों के स्थापक, आत्म-स्वरूप मे लीन होकर मोक्ष पधारते हैं।

५, छः काय सिद्धि

पृथ्वी काय

जैसे मनुष्य के शरीर का घाव स्वय भर जाता है, वैसे ही खुदी हुई खान भी स्वय भर जाती है ! खूले पैर चलने वाले मनुष्य के तले घिसते हैं और पूर्ति होती रहती है वैसे ही मनुष्य, पशु, सवारियों के आवागम से पृथ्वी घिसती रहती है और पूर्ति होती रहती है जैसे बालक क्रमशः बढता है इसी प्रकार पर्वतादि नित्य धीरे २ धीरे २ बढ़ते रहते हैं। मनुष्य को लोहा पकडना-लेना-हो, जब लोहे के पास जाना पडता है, परन्तु चम्बुक नामक-पत्थर अपने स्थान पर रहकर चैतन्य शक्ति द्वारा लोहे को खैचता है। मनुष्य के पेट मे पत्थरी का रोग होता हैं, वह सचित्त होने से नित्य बढता है। मछली के पेट में रहा हुआ मोती भी एक तरह का पत्थर है, वह नित्य बढता है। जैसे मनुष्य की हड्डियां मे जीव है, वैसे पत्थर में भी जीव है।

अपकाय (जल)–

पक्षी के अण्डे में रहे हुए प्रवाही पदार्थ पंचेन्द्रिय पक्षी के के पिण्ड स्वरूप है, वैसे पानी के जीव भी एकेन्द्रिय जीवों के पिण्ड रूप है। मनुष्य तथा तिर्यंच गर्भावस्था के प्रारंभ मे प्रवाही रूप होते हैं, वैसे ही जल के जीव समझें। जैसे सर्द ऋतु-मे मनुष्य के मुँह मे से बाफ निकती है वैसे कूए के जल से बाफ निकलती है। मनुष्य का शरीर ठण्डी मे गर्म और गर्मी मे ठण्डा रहता है, वैसे कूए का जल भी ठण्डी मे गर्म और गर्मी मे ठण्डा रहता है। मनुष्य की प्रकृति मे जैसे ठण्डी और गर्मी है।

वैसे जल की प्रकृति में भी ठण्डी और गर्मी रहती है। जैसे शीत काल मे मनुष्य का शरीर अकड़ जाता है, अधिक ठण्डे प्रदेश में लोहू जम जाता है, वैसे ही अपकाय-जल अकड़ जाता हैजम जाता है-वर्फ हो जाता है। देहधारी बाल, युवा और वृद्धावस्था क्रमशः धारण करते हैं, वैसे जल भी बाफ, बर्फ और वर्षा अवस्था धारण करता है। जैसे मनुष्य देह माता के गर्भ में पकता है उसी प्रकार जल भी छः मास तक बादल रूप गर्भ में रहकर पक्व होने पर वर्षा का रूप लेता है। देहधारी का गर्भ कभी कच्चा गिर जाता है वैसे पानी का भी कच्चा गर्भ गलता है जिस को गडे कहते हैं।

तेजस्काय (अग्नि)-

जैसे देह धारी जीव श्वासोश्वास विना जी नहीं सकता, वैसे अग्नि काय भी श्वासोश्वास बिना नहीं जी सकती है। जैसे ज्वर में देह धारी का शरीर गर्म (उष्ण) रहता है, वैसे अग्नि के जीव भी उष्ण होते हैं। मृत्यु होने से मनुष्यादि का देह ठण्डा पड़ जाता है, वैसे अग्नि के जीव भी नाश होने पर अग्नि ठण्ठी हो जाती है। जैसे जुगनू जीव के शरीर में प्रकाश होता है, वैसे अग्नि के जीवों मे प्रकाश है। जैसे त्रसजीव चलते हैं, वैसे अग्नि भी चलती है, फैल कर आगे वढती है। जैसे मनुष्य ऑक्सीजन (प्राण वायु) लेकर कार्वन (विप वायु) निकालता है वैसे ही अग्नि भी ऑक्सीजन लेती है और कार्वन हवा वाहर निकालती है।

वायु काय-

हवा कोसों तक स्वतन्त्रता से चल सकती है। हवा अपने चैतन्य बल से बड़े २ वृक्ष और महलादि को गिरा देती है। हवा

छोटे में से बडा शरीर बना सकती है। वैज्ञानिकों का मत है कि, हवा में थेक्सस नाम के सूक्ष्म जन्तु उड़ते हैं, वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि, सूई के अग्रभाग पर एक लाख जन्तु आराम पूर्वक ठहर सकते हैं।

वनस्पति काय–

मनुष्य का जन्म माता के गर्भ में अमुक समय रहने के बाद होता है वैसे वनस्पति का जन्म भी पृथ्वी माता के गर्भ में अमुक समय रहने के बाद अंकुरित होती है। जैसे मनुष्य देह बढ़ती है, वैसे वनस्पति भी बढ़ती है, जैसे मनुष्य बाल, युवा, वृद्धावस्था भोगता है, वैसी ही तीन अवस्था वनस्पति की है। जैसे मनुष्य के शरीर को काटने से लोहू निकलता है, वैसे वनस्पति को काटने से विविध रंग के प्रवाही रस निकलते हैं। जैसे खुराक मिलने से मनुष्य देह पुष्ट होता है और नहीं मिलने से सूखता है, वैसे ही वनस्पति को खाद और पानी का खुराक मिलने से विकसित होती है और न मिलने से सूख जाती है। मनुष्य की तरह वनस्पति भी श्वास लेती है। दिन को कार्बन लेकर आॅक्सीजन निकालती है और रात्रि को आॅक्सीजन लेकर कार्बन निकालती है। कितनेक मनुष्य मांसाहारी होते हैं, वैसे कोई २ वनस्पति भी मक्खी, पतंगादि छोटे जीवों का सत्त्व पत्तों द्वारा चूस लेती है या खाद द्वारा मांसाहार करती है। चन्द्रमुखी पुष्प चन्द्र के समक्ष और सूर्यमुखी फूल सूर्य के समक्ष खिलते हैं और उनके अस्त होने पर बन्द हो जाते हैं।

दो, तीन, चार और पांच इन्द्रिय वाले प्राणियों मे जीव होना तो विश्व विख्यात है।

६—मृत्यु ।

काल (मृत्यु) रूप सर्प के मुख मे समस्त विश्व बैठा है। गले मे काल की फांसी लग रही है, मात्र खींचने का विलम्ब है। जिसको आत्म भान नहीं उसे मृत्यु का भान कैसे हो ? मृत्यु का विश्वास हो, अवश्यम्भावी समझा जाय, तो आज ही जीवन परिवर्तन हो जाय। भारत मे नित्य ४० हजार मनुष्य मरते है। भारत मे मनुष्यो का औसत आयुष्य मात्र २३ वर्ष का है। इससे अधिक जीनेवाला भाग्य शाली है। प्राणी मात्र जीने की इच्छा में ही मरण शरण होते है। अज्ञानी मृत्यु के साधनों को जीवन वृद्धि के साधन मानता है। मृत्यु समय पश्चाताप न हो, ऐसा जीवन जीना चाहिए। आज ही मृत्यु होगी, ऐसा मान कर जीवन पवित्र रखना चाहिए। आज मृत्यु हो तो कौनसी गति होवे ? मृत्यु आज नहीं तो कल है ही। सन्तान की मृत्यु से पशु पक्षी वोध नहीं ले सकते, वैसे अज्ञानी भी अपनी सन्तान या स्नेही की मृत्यु से वोध नहीं पाते। प्रति समय मृत्यु घन्ट वज रहा है, तथापि सुनने के लिए अज्ञानी वहिरा है। घडी, घन्टा, वार, तिथि मास, पक्ष आदि मृत्यु के घटे हैं। प्रति समय जीव देह पर काल का असर होता है, पर पामर समझते नहीं है।

अनेक अकस्मातों मे से होकर १ दिन सुख रूप वीतता है। जहाँ तक पुन्य का उदय है, वहाँ तक अनेक अकस्मातों से वचाव हो जाता है। पुन्याई पूर्ण होने पर एक छींक, या एक उबासी भी मरण शरण के लिए पर्याप्त है। मृत्यु ही समझ में न आती हो तो स्वर्ग नरक, पुन्य पाप आदि कैसे समझ मे आवें।

यदि जीवन (जीवित) दशा मे ही मरा जाय—'मर-जीवा' होवें तो पुन पुनः मरना ही न पड़े। 'मर-जीवा' पुरुषों के प्रत्येक श्वासोश्वास मे स्वरूप लीनता, पद पद मे वीतरागता, शब्द-शब्द में गम्भीरता और उदासीनता, स्थान-स्थान आत्म-स्थिरता, पर-भाव में शयन दशा, स्वभाव में जागृत दशा, जीमते हुए अनाहार दशा, पीने मे ज्ञानामृत पान दशा, चलने में मोक्ष पथ पर प्रयाण और उठना वैठना भी आत्म धर्म मे ही होता है। मृत्यु को अवश्यम्भावी समझने वाले का जीवन ही उक्त प्रकार का हो जाना चाहिए।

मृत्यु काल जितना दूर माना जाता है, उतना ही कूदते-फूदकते वह निकट आरहा है। अपना शरीर जितना निकट हैं, उतनी ही निकट मृत्यु है। दुनिया समझती है कि, जन्म हुआ, परंतु ज्ञानी समझते हैं कि जीव गर्भ मे आता है उसी समय से मृत्यु निकट हो रही है। मच्छली मार की भांति काल, वाल, युवा या वृद्ध को नहीं देखता। वह तो जाल मे जो आते हैं, उनको श्मसान की भट्टी मे और वहां से नरकादि भट्टियों मे झोंकता रहता है। शरीर रूप कूएं में से चन्द्र, सूर्य रूप वैल, रात्रि दिवस रूप अरहट द्वारा आयुष्य रूप पानी अप्रमाद से क्षण क्षण खाली करते हैं। जिस कूएं को खाली करने के लिए चन्द्र, सूर्य जैसे वलवान वैल हैं, उस कूएं को खाली करने मे क्या विलम्ब हो ? मृत्यु समय जीव अशरण बनता है, परंतु धर्माराधन वाले जीव मृत्यु शरण होने पर भी स्वतन्त्र होते हैं। धर्मात्मा मृत्यु समय में निर्भय और पापात्मा भयभीत होता है।

मृत्यु ही मानव की प्रकृति मात्र का अन्त है। तो भी मानव मृत्यु को भूलने के लिये विषय-विलास के नये २ साधन बढ़ा कर मृत्यु को भूल जाता है, परतु मृत्यु उसे नहीं भूलती, मानव वर्तमान मे जिस अवस्था मे है उसी अवस्था मे नित्य रहना चाहता है, अपनी दशा बदलना नहीं चाहता। अवस्था-दशा का बदलना मानता भी नहीं है। काल हाथ लम्बा कर भेंटने को सामने खडा है किन्तु अज्ञानी उसे देखने मे अन्ध है। अज्ञानी के लिये मृत्यु भय रूप है और ज्ञानी के लिये मृत्यु मङ्गल स्वरूप है। एक मिनट भी अधिक जीने के लिये कोई आराधना नहीं है और जीवन दीपक जल रहा है। अतः प्रति समय पूर्व पुन्याई का तेल घटते २ जीवन दीपक बुझ रहा है। कसाई खाने में पहुँचे पशुवत् मृत्यु-सम्मुख होते हुए भी अज्ञानी अपने आपको अजर अमर मान कर निःसङ्कोचता से नित्य पाप प्रवृत्ति बढ़ा रहा है और मृत्यु से सावधान होने की शिक्षा देने वाले सद्गुरु को दीवाना या दया पात्र मानकर पाप प्रवृत्ति से पीछा नहीं हटता।

७–आज का मानस।

विज्ञान के जडवादी जमाने में वर्तमान मानवों के मानस भी जड दिखते हैं। चैतन्यवाद चूर हो रहा है और जड़वाद की इमारतें विविधता से चुनी जा रही है। धर्म-युग के स्थान पर वर्तमान युग धन-युग 'अर्थयुग' हो रहाहै। धन-अर्थ के लिये ही वैज्ञानिक साधनों-रेल्वे, मोटर स्टीमर आदि द्वारा दौड धूप हो रही है। अर्थ-युग को पहुचने के लिये इन साधनों की गति तूटी फूटी बैलगाडी जैसी मन्द दिखने से एरोप्लेन (वायुयान) का आविष्कार हुआ है। इसकी गति भी मन्द मालूम होती है अतः इससे भी अधिक वेगवत साधनों के आविष्कार की धुन मे वैज्ञानिक लोग लग रहे हैं।

जिस वस्तु के पैसे मिलते है-बदले में धन मिलता है, उसी को सत्य माना जाता हे। जिस वस्तु के पैसे न मिल सकें उसे मिथ्या, निकम्मी मानी जाती है। मानव की सर्व शक्ति द्रव्य, कीर्ति व योग्य पदार्थों के सचय मे खर्च होती है। धार्मिक प्रवृत्ति सहारक, व्यर्थ विडवना रूप दिखती है और आर्थिक प्रवृत्ति प्राणदाता सम प्रिय प्रतीत होती है। चैतन्यवाद का पूजक कनक कामिनी और कीर्ति को त्रिविध बधन समझ कर साप की काचलीवत् दूर करता है और जडवाद का पूजक उक्त त्रिमूर्ति (कंचन, कामिनी, कीर्ति) के अभाव मे चौधार अश्रु वर्षाता है। विषय विलास और विकार वर्धक उपदेश, वाचन, श्रवण, मनन को उचित समझता है और आत्मवाद के तत्त्वो को विष-मय मानता है। अनीति, अन्याययुक्त धनोपार्जी जीवन को वास्तविक, आनन्दमय, समझता है और नीति न्याययुक्त निर्धनता

को दुःख का भण्डार समझता है। विषय कषाय रहित चैतन्य-मय प्रवृत्ति दुर्गंधयुक्त सडे मुर्दे जैसी दुर्गन्धी और विषय कषाय युक्त प्रवृत्ति प्राणप्रिय समझी जाती है। विषयकषाय युक्त प्रवृत्ति के लिये जीव अविश्रान्त यत्न करता है मृत्यु की भी परवाह नहीं करता। धर्म तत्त्व को पदधूलि से भी अधिक हेय समझता है और धार्मिक क्रिया, धर्म गुरु, धर्म शास्त्रादि को सडी हड्डियों का पिण्ड सम अवांछनीय समझता है। अधार्मिकता को योग्य प्रवृत्ति और जीवन मानते है। अपनी सर्व शक्तियाँ धनोपार्जन मे लगाकर अपने आपको सफल समझता है।

सुख, आनन्द, ऐश आराम और मोजशोक से वेनसीव, भाग्यहीन और नालायकों के लिये ही धर्मतत्त्व समझा जाता है। धार्मिकता के त्याग मे ही अपना उद्धार माना जाता है। धार्मिक प्रवृत्तियो को शर्म भरी मूर्खता और अधोगतिका द्वार माना जाता है।

जडवाद के चश्मे को उतारकर आत्मवाद दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि, धर्म तत्त्व को जड मानने वाला स्वयं जड है। धर्म की शरण से ही भविष्य मे विशेष उज्वलता मिलेगी धर्म भावना के अभाव से ही देश का पतन दिखता है। समस्त राज्य और साम्राज्य भयभीत है, समस्त राजा महाराजाओं के सर पर कोहिनूर के नहीं किन्तु कांटे वाले ताज है। व्यापक विनाशी विषमय जहरीले गैस, बॉम्बगोले, लडाकू हवाईजहाज एवं जल जहाजो की धूमधाम से तैयारियाँ हो रही है। सब राज्यों के जीव मुट्ठी में है। आज शांति है, कल की कुदरत जाने! स्त्रियों के लिए भी लाजमी भर्ती के कानून बन चुके हैं, इन्कार होने वाले के लिये फांसी के मच तैयार है। लाखों मनुष्य भूगर्भ में

छिप कर रह सके ऐसे गुप्त भूतल बनाये गये हैं। जहरीले गैसों से बचने के लिए लाखों टोपियों का संग्रह किया गया है। ७० लाख की आबादी वाला लंडन कुछ घण्टों मे खाली करने की योजना विचारी जा रही है। आकाश मे उडते हवाई जहाजों को पक्षी की तरह गिराने वाले तोप गोले तैयार हो रहे हैं। हवाईजहाजों को कागज की तरह आकाश मे ही भस्मीभूत कर देने वाले किरणों का आविष्कार किया जा रहा है। पारधी पक्षी को जाल मे फसाता है इसी तरह हवाई जहाजों को फँसाने की जालें गूंथी जा रही हैं। यह प्रताप धर्म का या अधर्म का ?

धर्म के प्रताप से शांति और शीतल छाया है, इसके अभाव मे दावानल और ज्वालामुखी की ज्वालाएं तैयार होती हैं। बिना धर्म की प्रवृत्ति मे पैर रखना या विचारमात्र करना मानव धर्म का अपमान तुल्य है। सत्य, पवित्रता और निस्वार्थता, ये तीन बल त्रिलोक को हिला देने समर्थ है। धर्म भावना वाला विश्व के लिये आशीर्वाद और तीर्थ यात्रा समान है, इससे विपरीत शाप समान है। धर्म शाश्वत जीवन की शांति के लिये पाताल-कूप है। पातालो कुँए का सुख-शांति रूप शीतल जल कभी नष्ट नहीं हुआ है, न होगा। जडवादी समाज आत्मवाद का शरण लेगा तभी वह शरणभूत होगा। अन्यथा विकास के नहीं किन्तु विनाश के पथ पर है।

८-जड़वादी आत्माओं का स्वरूप।

आत्म तत्त्व चन्द्र सूर्य से भी अनन्त गुण अधिक प्रकाशित और सब से अत्यधिक नजदीक होने पर भी उसके अस्तित्व का भान अनुभव मे नहीं आता। शरीर के लिये चन्द्र-सूर्य से भी अधिक प्रकाशित चक्षुओं का उपयोग किया जाता है, परंतु आत्म-तत्त्व के दर्शन के लिये जुगनू जितना प्रकाश भी जड़वाद के आवरण के कारण अनुभव मे नहीं आता।

मनुष्यों अन्य विषयों मे बहुत जानते हैं, किन्तु अपने विषय मे कुछ भी नहीं जानते हैं। अनेक विषय मे प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं, मात्र अपने निजात्म का उत्तर देने मे सर्वथा असमर्थ है। लाखों मिल दूर के प्रदेशों की उन्हे मालूम है, किन्तु सब से निकट शरीर से भी अत्यन्त निकट ऐसे अपने आत्म तत्त्व का किंचिन्मात्र भान नहीं है। जल, स्थल और गगन विहार-सफर करके अनेक अनजाने प्रदेशों का अन्वेषण किया और कर रहे है, परंतु खुद के आत्म प्रदेश को ढूंढ न सका। लाखों मिल दूर बैठे रेडियो व वायरलेस द्वारा बात चीत हो रही है, वहां की जनता के सुख दुःख के समाचार पूछे जा रहे हैं। इतने दूरस्थ मनुष्यों से सम्बन्ध बांध रक्खा है, परंतु आत्मा खुद के साथ सम्बन्ध बांध नहीं सका है, आत्मा खुद के सुख दुःख का विचार मात्र नहीं कर सका है, न अपनी निजात्मा से लेश मात्र सम्बन्ध जोड सका है। इससे अधिक आश्चर्य और नास्तिकता अन्य क्या हो सके?

तीन लोक का राज्य करने का यत्न कर रहा है, परंतु अपनी आत्मा पर राज्य करने का यत्न नहीं करता। तीन लोक के भाव जानने की आतुरता है अतः उन्हें जानने देखने के लिये लाखों का खर्च करने को तयार है मात्र उसे निज आत्म भाव जानने-सुनने

की दरकार नहीं है, कोई आत्म-भाव कहे-सुनावें तो जानने सुनने की इच्छा भी नहीं होती। मनुष्य मे अखिल विश्व को वश मे करने का प्रयत्न होता है परन्तु खुद अपने को वश मे नहीं कर सकता। विश्व के साथ मैत्री करना चाहता है और निजात्मा से वैर बुद्धि बढाता है। विश्व को देखने की आतुर इच्छा है, पर निजात्म दर्शन के लिये अन्ध दशा रखता है। तीन लोक के जीवों की चिंता व पंचायत करता है और अपना निजात्मा का लेश मात्र भान नहीं है।

रेडियो, वायरलेस, बिजली, भाफ, रेल्वे, मोटर, स्टीमर एरोप्लेन आदि अनेक आविष्कार हुए और हो रहे हैं। परतु अपनी आत्मा का आविष्कार न किया। जड पदार्थों की प्रगति की, परंतु अपनी प्रगति न कर सका। विश्व को दयापात्र समझ कर उसकी दवाई करने का यत्न करते हैं, परंतु अपनी दया नहीं है तथा अपने लिये दवा का विचार भी नहीं है। विश्व को सुखी रखने की तमन्ना वाले को अपने सुख का तो भान नहीं है। मलीन में मलीन पदार्थ को उपयोगी-खाद माना है और उसकी रक्षा के लिये वाड की जाती है, परन्तु खुद को निरर्थक निरुपयोगी माना जाता है तो रक्षण के लिये बात ही क्या हो? करोड़ो और अरबों के हिसाब किये, परन्तु अपने एक का हिसाब न किया, न अपने हिसाब का एका लिखने को पाटी-पेन हाथ मे लिया। लेना आता नहीं है, पसन्द भी नहीं है।

बढे हुए सिर के बाल या हाथ पर के नाखून जितना भी आत्म-तत्त्व को मान देने मे आवे या स्मरण मात्र किया जाय तो 'मैं कौन हूं? कहा से आया हूँ और कहा जाऊंगा?' इतना भान सदा होता रहे। छोटे से बडे समस्त दुनियावी पदार्थों के लिये अ-

नन्त कष्ट सहे जाते हैं और स्वात्मा के साथ प्रमाद किया जाता है। शरीर के नाश के साथ आत्मा का भी नाश माना जाता है।

वडोदे के अजायब घर मे ३००० वर्ष का पुराना मृत-देह (मुर्दा) है। उसे देखने के लिये हजारों मनुष्य हजारों कोसों से हजारों रुपयों का खर्च करके आते हैं, परन्तु उसे सम्यक् प्रकार से देखने के लिये आंख भी नहीं खोलते।

स्थूल भाषा मे कहे तो आत्मा जीव योनि मे भ्रमण करती है और आध्यात्मिक भाषा मे कहे तो भिन्न २ मानसिक भूमिका मे भ्रमण करती है और करेगी। मानसिक भूमिका के अनुरूप आत्मा विविध जीवयोनि को प्राप्त होती है, किन्तु जडवाद के बंधन से आत्मा अपना भान भूला होने से अपने अस्तित्व का भी भान नहीं है। इसमे चैतन्य होने पर भी जड़वत् जीवन बिताकर जड़ जैसी (स्थावर) जीवयोनि मे जन्म धारण कर के मानव भव के महत्व शाली पद को हार जाता है। ऐसा न हो और मानव की श्रेष्ठता समझ कर उत्तरोत्तर प्रगति के लिये आप अपने ही चौकीदार बनें और अपनी आत्मा का ढूंढे।

६—नारकीय-यातना

नरक कैसा है ? उसकी वज्रमय दीवार है बहुत चौडी है, अखण्ड (बिना सांध की) है, बिना द्वार की है, कठोर, भूमितल वाली है, कठोर कर्कश स्पर्शवाली है, ऊंची नीची विषय भूमि है, बन्दीखाने (Jail) जैसी है। अत्यन्त उष्ण, सदा तप्त, दुर्गंधयुक्त सड़े पुद्गल वाली, उद्वेग जनक, भयंकर स्वरूप वाली है। वे नरक गृह शीतलता मे हिम के पटल जैसे, काली कांति वाले, भयकर, गहरे गहन रोमांचकारी हैं, अरमणीय हैं। अनिवार्य रोग और जरा से पीडित नारकीय जीवों का यह निवासस्थान है। वहां सदा तिमिर गुफा जैसा अन्धकार व्याप्त है, और परस्पर भयभीत रहते हैं। वहां चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र, तारे आदि नहीं है । नारक गृह चर्बी, मांस, रसी, लोहू से मिश्रित, दुर्गंधमय, चीकने और सड़े कीचड से व्याप्त हैं। वहां खेर की लकडी के अग्नि जैसा ज्वाजल्यमान और राख से ढका हो वैसा अग्नि है । उन नरक ग्रहों का स्पर्श तलवार, छुरे, करवती जैसा तीक्ष्ण, एवं विच्छु के डक जैसे अति दुःखकर है। ऐसे नरक मे जीव रक्षण बिना, त्राण बिना, शरण बिना, कडुये दु:ख मे पीडित होता हुआ पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म भोगता है। नरक परमाधामी देव (जमदेव) से भरा है। इन जमदेवों के द्वारा नारकी जीवो को अन्त मुहूर्त मे वैक्रय लब्धि द्वारा बदसूरत, भयानक, हड्डी-नस-नाखून-रोम रहित देह बनाते हैं जिसके द्वारा अशुभ वेदनाए भोगते हैं। यह वेदना अत्यन्त कठोर प्रबल, सर्व शरीर व्यापी, चित्त-वाणी व देह मे व्याप्त, अन्त तक निरन्तर रहने वाली है। वे वेदनाएं तीव्र, कर्कश, प्रचण्ड, भयानक और दारुण कैसी है ? सो अब कहते हैं।

लोहू की बडी हराडी मे पकाना भूंजना, कडाई में तलना, भट्टी मे भूंजना, लोहे के वर्तन मे उबालना, बलिदान देना (गर्दन ऊडा देना), खांडना, चीरना, फाडना, सिर को पीछे झुका कर बांधना, ऊधा लटकाना, हंटर मारना, गले मे फांसा डाल कर झुलाना, शूली पर चढाना, आज्ञा देकर ठगना, अपमानित करना, वधभूमि पर लेजाना, गुन्हा बता २ कर दंड देना, जमीन मे गाड़ना आदि अनेक विध कष्टों से पूर्वसंचित कर्म द्वारा जीव नरक मे पीड़ा पाते हैं।

नरक क्षेत्र की अग्नि महा-अग्नि दावानल सी है। उसकी अति दुःखद, भयप्रद, अरसता जनक, शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की वेदना भोगते हैं। पल्योपम और सागरोपम के आयुष्य तक विचारे सहते हैं।

परमाधामी देव नारकों को त्रास उपजाते हैं, जब नारकीय जीव बडे करुण आक्रदन से भयभीत स्वर से कहते हैं कि "हे अत्यत शक्तिमान, हे स्वामिन्, हे तात, ओ बाप, मुझे छोडिये, मैं मरता हूँ, मैं दुर्बल हूँ, व्याधि पीडित हूँ" ऐसा बोलते २ वे दया रहित परमाधामी की तर्फ दृष्टि करता है कि वे न मारें। वे कहते हैं "मुझे कृपा करके क्षण भर के लिये श्वासोश्वास लेने दें, मुझ पर रोष न करें, मैं क्षण-मात्र विश्राम ले सकूँ इसलिए मेरे गले का बंधन छोडिए, नहीं तो मैं मर जाऊँगा। मुझे बहुत प्यास लगी है अत पानी पीने दें।" उस वक्त परमाधामी उन नारकों को 'ठंडा, निर्मल पानी पी' ऐसा कह कर उसका मुँह फाडकर सीसे का उष्ण-प्रवाही रस डालते हैं, इस जलसे नारक जीव कम्पित हो जाते हैं और अश्रुपात करते हुए कहते हैं कि 'मेरी तृषा नष्ट होगई, अब पानी पीना नहीं है। ऐसा बोलते २ नारकी चारों ओर दृष्टि

पात करते रक्षण रहित, शरण रहित, अनाथ, अबांधव, स्वजनादि से रहित, भयभीत मृग की तरह शीघ्रता और भय से उद्विग्न होकर भगते हैं। भगते जीवों को निर्दय परमाधामी बलात्कार से पकड़ कर उनका मुंह लोह दंड से खोलकर धग धगते रुधिर का रस डालते है। उन्हें दाझते (जलते) देखकर परमाधामी हँसते है और नारक जीव प्रलाप करते हैं। भयकारी अशुभ शब्द उच्चारते हैं, रौद्र शब्द करते है। इस प्रकार प्रलाप करते, विलाप करते दयामय शब्दों से आक्रन्दन करते नारकी 'हे देव! हे देव!' ऐसे करुणा जनक शब्द उच्चारते हैं। बंधे हुए, रुंधे हुए नारको का ऐसे आर्तस्वर सुन कर तर्जना करते हुए धिक् धिक् उच्चारण करके कोपायमान परमाधामी अव्यक्त गर्जना करके नारकों को पकड़ते हैं, बल वापरते हैं आंख फाडकर डराते हैं, हाथ पैरादि अंग काटते है, छेदते है, मारते है, गला पकड़ कर बाहर निकालते हैं और पीछे धकेलते हैं तथा कहते हैं कि 'पापी! तेरे पूर्व पाप कर्म और दुष्कृत्यों को याद कर' ऐसे शब्दों से त्रास जनक प्रतिध्वनि होता है कोलाहल मचता है। नरक में परमाधामी से पीड़ित नारक अनिष्ट शब्दों का उच्चारण करते हैं। परमाधामी देव नारकों को तलवार की धार जैसे पत्ते के वन में, दर्भ के वन में, अनघड नोकदार पत्थर की भूमि मे, धारदार शूलों के जंगल मे, क्षार पूर्ण बावडी में, उष्ण रुधिर रस की वैतरणी नदी मे, कदंब पुष्प सी चमकती रेत मे, प्रज्वलित गुफा कंदरा मे फेंकते हैं, जिससे वे महापीड़ा पाते हैं। अति तप्त कांटे वाला धूसर सहित रथ मे नारकों को जोतकर तप्त लोह मार्ग पर परमाधामी बलात् चलाते हैं और ऊपर से विविध शस्त्रों से मार मारते हैं। वे शस्त्र कैसे हैं?

मुद्गर, मुसुंढी, करवत, त्रिशूल, हल, गदा, मूशल, चक्र, भाला, बाण, शूली, लकडी, छूरी, लम्बा भाला, नाल, चमडे मे मढा हुआ पत्थर मुद्गराकार हथियार, तलवार, तीर, लोहे का बाण, कतरनी, वसोला परशु आदि अति तिक्ष्ण, उज्ज्वल, चमकीले अनेक प्रकार के भयंकर शस्त्र विकुर्व कर (वैक्रिय बनाकर) और सज्जकर पूर्व भव के वैर भाव से नारकों को महा वेदना उपजाते है। मुद्गर के प्रहार से चूर्ण कर डालते है, मुसुंढी से भांगते तोड़ते है, देह को कुचलते है, यत्र से पीलते है, तडफते देह हथियारों से काटते हैं, चमड़ी उतारते है, कान-ओष्ट-नाक को मूल में से काट डालते है, हाथ पैर छेदते हैं, तलवार, करवती नौकवाला भाला, और परशु के प्रहार से नारक देह को काटते हैं। वसोला से अंगोपांग को छेदते है। गरमागरम क्षार के छिटकाव से गात्रों को जलाते हैं। भाले की नौक से शरीर जर्जरित करते है। जमीन पर पटक कर रगडते है। इससे नारको के अगों पांग सूझ जाते है।

पुनः परमाधामी नरक मे नाहर, कुत्ते, बिल्ली, कौए, अष्टापद चित्ते, बाघ, सिह आदि के रूप बनाकर नारक जीवों को पैरों के बीच रखकर तीक्ष्ण दाढों से मारते है, खींचते है, तीक्ष्ण नाखूनों से फाड़ते है, चीरते है। परमाधामी देव कौए, गीध, कंकादि पक्षी के रूप बनाकर अपनी वज्रमयी तीक्ष्ण चोचसे पीडा उपजाते है, आंखे फोड़ते है, चमड़ी उधेडते है इत्यादि अनेक प्रकार की पीडा नारक जीव भोगते है और अपने पूर्व भव के पाप के लिए परम पश्चाताप करते है तथा स्वय निजात्मा की निंदा करते है, तथापि पाप क अशुभ फल विना भुगते छुटकारा होता नहीं है।

(श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के आधार से)

तत्त्व-विभाग

१—नव-तत्त्वों का स्वरूप

ज्ञानी पुरुषों ने समस्त संसार को नव तत्त्वों से भरा हुआ कहा है। (१) जीव [चैतन्य], (२) अजीव [जड], (३) पुण्य [शुभ कर्म], (४) पाप [अशुभ कर्म], (५) आश्रव [कर्म आने के हेतु], (६) संवर [कर्म रोकने के हेतु], (७) निर्जरा [कर्मों का क्रमशः पृथक् होना], (८) बंध [जीव के साथ कर्मों का बंधना] (९) मोक्ष [चैतन्य की कर्मों से मुक्ति].

उक्त तत्त्वों का नूतन दृष्टि से क्रमशः निरूपण किया जायगा।

जीव तथा अजीव

वर्तमान युग में विज्ञान ने रेल्वे, मोटर, स्टीमर, एरोप्लेन, तार, डाक, रेडियो, टेलिफोन, वायरलेस, बिजली, गेस, फोनोग्राफ आदि के विविध आविष्कार किये हैं। तथापि वैज्ञानिक लोग अपने आपको विज्ञान के पालनेमें झूलते बच्चे समझ कर नये नये आविष्कार कर रहे हैं और करते रहेंगे।

लाखों वैज्ञानिक एकत्र होने पर भी वे बड के बीज जैसी प्राकृतिक छोटी सी वस्तु बना नहीं सकते। लाखों इंजिन और एरोप्लेन से भी बड के १ छोटे से बीज में अनंतगुनी अधिक शक्ति है। बड के बीज में ऐसे क्रोडों बीज ही नहीं परन्तु बीजों के विस्तार वाले क्रोडों वटवृक्ष अन्तर्गत हैं। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध होने से विशेष विस्तार अनावश्यक है।

लाखो एञ्जिन और एरोप्लेन जमीन मे गाड दिये जायँ तो सब मिट्टी मे मिट्टी रूपेण मिल जायगा, किन्तु बडके बीज को जमीन मे रखने से विशाल वट वृक्ष खडा होजायगा। क्योंकि, उस छोटे से बीज मे चैतन्य सत्ता है और बडे २ एञ्जिन जड़ है। इसी कारण वे अपनी प्रकृति-विकाश-में असमर्थ हैं।

४० तोले के एक पानी के गिलाश मे ५००० टन कोयले की शक्ति है। इस हिसाब से १ रत्ती पानी मे सवा टन अर्थात् पैंतीस मन कोयले की शक्ति है। ४० तोले पानी की बिजली की शक्ति से एक विशाल स्टीमर हजारों मीलों की यात्रा कर सकती है, ऐसा विज्ञानियो का मत हैं। वट के बीज मे और पानी की बून्दों मे जो कि स्थावर जीव है उनमे इतनी शक्ति है तो मनुष्य मे कितनी शक्ति हो सकती है? इसका अनुमान सहज मे ही लग सकता है। प्राणी का स्वभाव ज्ञान-मय है। इसी मानवीय शक्तियों के द्वारा विज्ञानियों ने आविष्कार किए हैं। उन्होंने जडवाद का विकास किया है। वैसे ही मनुष्य अपना आत्म-विकास कर सकता है।

सातवीं नरक का परमाणु समय मात्र मे सिद्धशिला में जा सकता है। इतनी शक्ति जड की है तो चेतन्य की अनन्त गुणी विशेष शक्ति होना स्वभाविक है।

सर्व जीवयोनियो की अपेक्षा मनुष्य मे उत्कृष्ट शक्ति है तो उसे उत्कृष्ट शक्ति का सदुपयोग धर्माराधना म करना चाहिए।

कलाकार पत्थर को काट-छांट कर उसमे मे इच्छित प्रतिमा बनाता है, उसी प्रकार मनुष्य-जीवन का आशय विषय कपाय से दबी हुई शक्ति को प्रकट करने का है और उसी आशय से 'आत्मा ही परमात्मा' यह वचन ज्ञानियो ने कहा है। मनुष्य जैसा बनना चाहे वैसा बन सकता है। वह सर्व प्रकार से शक्ति सम्पन्न है। अनन्त ज्ञान तथा बल का अधिकारी है। जीवन का विकास केवल मानव-भव मे ही हो सकता है।

पुण्य—

शीतल चन्दन से उत्पन्न हुई अग्नि शरीर पर पड़े तो वह शरीर को जलाती है। उसी प्रकार प्राप्त पुण्य से अगर धर्माराधन न किया जाय तो वह चन्दन से उत्पन्न हुई अग्निवत् दुःखदायी है।

एक भिखारी पुण्योदय से धनी हो जाय तो वह पहले की अपेक्षा विशेष भोगमय जीवन बितायगा और विशेष पाप-कर्म उपार्जन करके विशेष दुर्गति का अधिकारी होगा। उसी प्रकार पूर्व जन्म के पुण्योदय से प्राप्त सम्पत्ति का विश्व की भलाई के लिए उपयोग न करके केवल अपने ऐश-आराम में उपयोग करने वाला पाप का उपार्जन करके सद्गति का अधिकारी नहीं हो सकता। ऐसे पुरुषों को शास्त्रकारों ने पापानुबन्धी पुण्य वाला माना है। अर्थात् धन, वैभव उसको पुण्योदय से प्राप्त हुआ है, किन्तु उसका धर्म-कार्य में उपयोग न करने से वे साधन उसके पाप में अधिकता ला देते हैं, और वह पाप के कारण दुर्गति का अधिकारी हो जाता है।

है वही पुण्य है। जो पुण्य धर्माराधन मे साधक नहीं होवे और केवल विषय-विलास, ऐश आराम मे ही उपयोगी हो, ऐसा पुण्य भविष्य एव परलोक दोनों के लिए ही परम दुःखदायी है। पुण्य की सामग्री से धर्माराधना करे ऐसे जीव को पुण्यानुबधी पुण्य का उदय मानने मे आता है, जो निर्धन मनुष्य धर्म आराधन न करता हुआ विषय-विलास के लिए रात-दिन तडफता रहता है ऐसे मनुष्य को पापानुबंधी पाप का उदय समझना चाहिए।

पाप—

सज्जन सुपथ पर एव दुर्जन कुपथ पर ले जाता है, उसी प्रकार शुभ कर्म सुपंथ पर लेजाता है एव अशुभ कुपंथ पर। पाप मय-प्रवृत्ति ही कुपंथ है। जब एक ही बार दुःखदायी विषैला जन्तु या जहरी पदार्थ से सावधानी रखी जाती है, तो अनन्त भवो मे दु ख देने वाले पाप रूप विषैले जन्तु से कितनी सावधानी चाहिए, यह स्वयं ही समझा जा सकता है। ज्ञानी पाप को सिंह, सर्प एव अग्नि वत् भयंकर समझ कर उस से सावधान रहता है और अज्ञानी उस मे सहर्ष भट करता है। एव असीम-पीडा का भागी बनता है।

हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, धन-लोभ आदि पापों से भी क्रोध, मान, माया एव लोभादि महान पापों का कटु-फल भोगना पडेगा, यह विचारणीय है।

इस लोक मे पापी जीवों के लिए अल्प समय पहले ६०० ार की तरसा तरसा कर मार डालने वाली त्रासदायक फांसी न मे आती थी। उसमे भी अनन्त गुणी विशेष सजा पापी को नरक मे भोगनी पड़े यह स्वाभाविक है।

नारकीय जीव नरक में से बाहर निकलने के लिए कोलाहल करते हैं, वैसे पापी जीव पाप मय प्रवृत्ति से नरक में प्रवेश करने के लिए कोलाहल करते हैं।

नारकीय जीव नरक की यातना भोगकर बाहर निकल रहे हैं और पापी जीव पाप करके उसमें प्रवेश करते हैं।

जिस प्रकार अग्नि राख में दबी हुई होने से नहीं दिखाई देती किन्तु फिर भी अपना स्थायीत्व रखती है, उसी प्रकार पुण्य रूपी राख में पाप रूप अग्नि दबी हुई होनेसे पाप के कडुवेफल वर्तमान में देखने में नहीं आते, किन्तु पुण्य पूरा होने पर पाप प्रकट होता है। और उसके परिणामस्वरूप विविध दुःख भोगने पड़ते हैं।

पाप देखने में बड़ के बीज की तरह सामान्य प्रतीत होता है। किन्तु बीज बढ़कर विशाल वट वृक्ष जैसा गम्भीर बनजाता है, वैसे अज्ञानी अपने किए हुए पापों के लिए अनन्त पश्चाताप करता है. रुदन करता है, शोक करता है, तदपि उसको किए हुए पापों का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

कसाई जैसे जीव को भी कुएँ में पड़ने की सलाह नहीं दी जा सकती तो ज्ञानी पाप के अनन्त भयङ्कर कूप में स्वेच्छा से कैसे डलें? पाप-प्रवृत्ति में प्रवृत्त न होना यह परोपकार नहीं किन्तु स्व-आत्मा पर परम उपकार है।

परमाधामी के मार से भी आश्रव का मार अधिक भयंकर है, परन्तु अज्ञानी जीव आश्रव को अमृत मानकर उसका (आश्रवका) सेवन करता है ।

आम्र की गुटली बोने वाला सैकडों आम्र वृक्ष का मालिक बनता है और गुटली भुंजकर खा जाने वाला दरिद्री बनता है। उसी प्रकार इन्द्रियों का संवर करना-नियमन करना पुन्याई को बढ़ाना है और इन्द्रियों के विविध भोग भोगना अनंत पूर्व पुन्याई को खाजाने जैसा है ।

पाचों ही इन्द्रियों मे रसेन्द्रिय से अधिक सावधान रहने का है अन्य इन्द्रियाँ एक २ कार्य करती है और रसेन्द्रिय (जिव्हा) स्वाद लेने और बोलने का, दो कार्य करती है । कुत्ते की जीभ स्नेहियों के शरीर के घाव रूझा देती है, जब मनुष्य की आश्रवी जीभ स्नेहियों के हृदय मे घाव कर देती है, पुराने घावको ताजे और छोटे घाव को बडा करती है । रसास्वाद भी द्रव्य और भाव से विशेष भयंकर है । तलवार अपने स्वामी की रक्षा करती है, परन्तु जीभ रूप तलवार रसास्वाद से शरीर मे अनेक रोग उत्पन्न करके अपनी घात करती है तथा वचन से स्नेहियों की घात करती है । अन्य इन्द्रियाँ प्रकट रहती है जब यह इन्द्रिय पर्दे मे मुंह के भीतर रहती है। रसनेन्द्रिय को वश करने वाला अपनी पांचों ही इन्द्रियों को वश करता है ।

मिथ्यात्व का आश्रव चौथे गुणस्थान पर पूर्ण होता है ।
अव्रत का आश्रव छट्ठे गुणस्थान पर पूर्ण होता है ।
प्रमाद का आश्रव सातवे गुणस्थान पर पूर्ण होता है ।
कषाय का आश्रव तेरहवे गुणस्थान पर पूर्ण होता है ।
योग का आश्रव चौदहवे गुणस्थान पर पूर्ण होता है ।

संवर—

मन वचन काया का संयम तथा किसी का लेश मात्र दिल न दुखाकर सर्व प्रवृत्ति जागृति पूर्वक करना 'संवर' है। हलन चलन आदि की प्रवृत्ति शीघ्रता पूर्वक करने से आत्मोपयोग भूला जाता है। इससे असंयम होता है और संवर का नाश होता है। ज्ञानियों को उपयोग की जागृति होने से आश्रव के स्थान संवर रूप होते हैं अज्ञानियों को उपयोग-जागृति के अभाव मे (अयत्ना से) संवर के स्थान आश्रव रूप होते हैं।

डॉक्टर—वैद्यों के कहने से रोगी को वर्षों तक अपनी इन्द्रियों का संयम (संवर) रखना पडता है, तो अनंत जन्म-मरण के दुखों से मुक्त होने के लिए कितने संयम की आवश्यकता हो? यह सहज समझा जा सकता है। इस भव मे अपनी इन्द्रियों का संवर न करने वाले को नरक निगोद रूप अनन्त दुःखमय स्थिति मे परवशता से अपनी वासना एवं तृष्णा को वश करना पडता है।

दूध दही, घृत, गुड, शक्कर, मिश्री आदि पदार्थों का भी अच्छे से अच्छा उपयोग करने का लक्ष्य रक्खा जाता है तो अपनी इन्द्रियों और शरीर का अच्छे से अच्छा संवर मय उपयोग करना चाहिए और आश्रव की प्रवृत्ति से अपनी आत्म रक्षा करना चाहिए।

जन्म मरण दूर करने के लिये निर्जरा (तप) औषध समान है। संसार रूप काल ज्वर से पीडितो के लिये तप शीतल चन्दन समान है। तप करने से प्रत्येक समय कर्म का क्षय होना है और अन्त मे कर्म रहित होते है।

बन्ध —

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद कषाय, और योग, ये पांच प्रकार के बधन है। मन, बचन, काया आत्मा के यंत्र है। इन यंत्रो द्वारा कर्मों का वंध होता है। मन बचन काया की प्रवृत्ति मे जहां २ कषाय मालूम हो उसे निकाल देना चाहिए। मन वचन काया की प्रवृत्ति से कर्म वंधन की वृद्धि होवे तो इनकी प्राप्ति ही निरर्थक है।

आत्मा स्वयं आत्मा को वांधती है और छोड़ती है। जितना पुरुपार्थ कर्म वांधने के लिए किया जाता है इतना पुरुपार्थ कर्म तोडने के लिए किया जाय नो आत्मा शीघ्र कर्मों से मुक्त हो सके। कर्म वांधने का पुरुपार्थ असद् है और कर्म तोडने का पुरुपार्थ सत्पुरुपार्थ है।

घोड़े को दौडता रखने के लिए मालिक घोडे के गले मे और पैरों मे घुंघरे वांधता है तथा मस्तक पर कलगी लगाता है। मुंह के पास चने और हरा घास रखता है और दौड़ाने के लिए रंगीन चाबुक रखता है। ऐसे प्रलोभनों से घोडा गाडी मे बधता है, वैसे ही संसारी जीव स्त्री पुत्र कुटुम्ब बाग बंगले गाड़ी घोडे मोटर तथा सोना चांदी हीरे मोती माणक के टुकड़ों के प्रलोभनों से इस भव मे संसार रूप गाडी के वंधन मे बधकर चोरासी लाख जीवयोनि में अनंत काल तक भवभ्रमण करते हैं।

मोक्ष--

मानव भव मोक्ष द्वीप है, परन्तु विषय कषाय युक्त प्रवृत्ति के कारण वह संसार द्वीप बन पाया है। माता के गर्भावास के बंधन में से मुक्त होने के लिए अकाम परिषह सहन करने पड़ते हैं तो अनंत जन्म मरण के बन्धनों में से मुक्त होने के लिए कितने तप और त्याग की आवश्यकता होना चाहिए? यह सहज ही समझ में आ सकता है।

क्रोड़ों वड़के बीज कुचला कर नष्ट होते हैं, उनमें से कोई एक बीज वड़ का स्वरूप धारण करता है, उसी प्रकार क्रोड़ों मनुष्य अपना जीवन पाप मय रीति से पूर्ण करते हैं और कोई भाग्य-शाली जीव धर्म पथ-मोक्ष पथ के सन्मुख होते हैं।

द्रव्य पथ काटने के लिए रेलवे, मोटर, स्टीमर एरोप्लेनादि शीघ्रगामी साधन काम में लिये जाते हैं, तो मोक्ष पथ के लिए कितनी शीघ्रता अप्रमत्त दशा होनी चाहिए? यह सुज्ञ सरलता से समझ सकेंगे।

मोक्ष मधुर है, मोक्ष की साधना उससे विशेष मधुर है।
मोक्ष अर्थात् आत्मविकाश की पूर्णता.

आत्म स्वरूप से गिरना बध है और आत्म स्वरूप मे स्थिरता ही मोक्ष है। आत्मा (निज) के लिये आत्म (निज) बुद्धि ही मोक्ष है।

प्रश्न—मैं कब मुक्त होऊंगा ?

उत्तर—जब 'मैं' नहीं रहूँगा।

२—मिथ्यात्व

वर्तमान कालीन बिना धार्मिक ज्ञान का शिक्षण मनुष्य को मात्र अपने शरीर सुख मे लीन रखता है। नये २ आविष्कार द्वारा शरीर सुख के साधन बढाकर मृत्यु का विचार मात्र भुलाया जाता है। मानव सम्यक् विचार नहीं कर सकते। सदा शरीर सुख के मिथ्या विचार (मिथ्यात्व) मे लीन रहते हैं। आत्मा का ज्ञान हो वही सत्य शिक्षण और वही समकित है।

पचम काल मे मिथ्यात्व वृद्धि के साधन प्रति दिन बढ रहे हैं। विलास के साधनों मे गृद्ध होकर मानव आत्म विकास के पथ को भूल जाता है।

मानव मे से मिथ्यात्व के कारण प्रति दिन दान शील तप भावना, ज्ञान दर्शन चारित्रादि के भाव नष्ट हो रहे हैं और विपरीत भाव भर रहे हैं मिथ्यात्व के कारण इस भव से

अलावा परभव के विचार भी नहीं होते। वर्तमान युग सचमुच गाढ मिथ्यात्व का युग है। अत. न्याय नीति के सूत्र भूले गये हैं, 'लाठी उसकी भैंस' और निर्बल का मृत्यु इस युग में है। देवों को भी दुर्लभ मानव भव मिथ्यात्व के उदय से नारक जीव भी न चाहे ऐसा तिरस्कार पात्र बन रहा है।

मिथ्यात्वी नित्य विलास के साधन और अपनी आवश्यक्ता बढ़ाये जाता है और समदृष्टि अपनी आवश्यक्ताएँ शरीर के रोगवत् घटाते जाते हैं क्रमशः अपना जीवन सादगी से चलाकर अपने सम्यक्त्वरत्न की रक्षा करते हैं।

३—अविरति

आत्म स्वरूप मे विशेष रति पाना-रक्त होना सो विरति और उस वृत्ति से उदासीनता का नाम अविरति। जब तक आत्मा की प्रतीति न हो वहां तक विरतिपना हो नहीं सकता। आत्मा अमर है, आनद का भण्डार है, ऐसा अनुभव न हो वहाँ तक इन्द्रियों के विपय भोग प्रति उदासीनता होने नहीं पाती। आत्मानुभव हुए विना व्रत प्रत्याख्यान की इमारत टिक नहीं सकती। जितने प्रमाण मे आत्मानुभव की दृढता होती है उतने प्रमाण मे व्रत प्रत्याख्यान मे दृढता रह सकती है।

आत्मा मे मिथ्यात्व का अंश होगा जब तक महान् उपदेशों की भी असर नहीं होती। रेती की नींव पर मकान ठहर नहीं सकता, वैसे ही मिथ्यात्व के नाश विना व्रत प्रत्याख्यान टिक नहीं सकते। मिथ्यात्व भाव दूर किये विना बोध देना लोहे के साथ लक्कड़ चिपकाना है अथवा रेत के लड्डू बांधना है।

विना आत्मानुभव के व्रत प्रत्याख्यान कुलमर्यादा अथवा लोक रूढी मे पाले जाते है। व्रत प्रत्याख्यान शरीर का धर्म नहीं है परन्तु आत्मा को आतर स्थिति बताने वाले है। वेप, भाषा, ज्ञान और विद्वता सच्चे त्याग के लक्षण नहीं है। आतर वासना

का नाश हुए बिना कोई भेष या अवस्था द्वारा स्वयं आत्मा की हानि, जो दबी हुई अग्निवत उपशांत मात्र है, निमित्त पाकर उसका पुनः उदय होता है।

व्रत प्रत्याख्यान की असर जीवन की समस्त प्रवृत्तियों में हो, वही त्याग व्यवहार सत्य है। यदि व्रत प्रत्याख्यान की असर जीवन पर न हो तो वे व्रतादि प्राय: सत्य नहीं हो सकते। त्याग के अभाव में मानव मानवता का त्याग कर पाशवता प्रकटाता है। ज्यों ज्यों त्याग की मात्रा घटती है त्यों त्यों पाशवता का नाश होकर मानवता प्रकटती है।

मिथ्यात्वी नित्य विलास के साधन और अपनी आवश्यक्ता बढाये जाता है और समदृष्टि अपनी आवश्यक्ताएँ शरीर के रोगवत् घटाते जाते हैं क्रमशः अपना जीवन सादगी से चलाकर अपने सम्यक्त्वरत्न की रक्षा करते हैं।

३—अविरति

आत्म स्वरूप मे विशेष रति पाना-रक्त होना सो विरति और उस वृत्ति से उदासीनता का नाम अविरति। जब तक आत्मा की प्रतीति न हो वहा तक विरतिपना हो नहीं सकता। आत्मा अमर है, आनद का भण्डार है, ऐसा अनुभव न हो वहाँ तक इन्द्रियों के विषय भोग प्रति उदासीनता होने नहीं पाती। आत्मानुभव हुए विना व्रत प्रत्याख्यान की इमारत टिक नहीं सकती। जितने प्रमाण मे आत्मानुभव की दृढता होती है उतने प्रमाण मे व्रत प्रत्याख्यान मे दृढता रह सकती है।

आत्मा मे मिथ्यात्व का अंश होगा जब तक महान उपदेशों की भी असर नहीं होती। रेती की नींव पर मकान ठहर नहीं सकता, वैसे ही मिथ्यात्व के नाश विना व्रत प्रत्याख्यान टिक नहीं सकते। मिथ्यात्व भाव दूर किये विना बोध देना लोहे के साथ लकड चिपकाना है अथवा रेत के लड्डू बांधना है।

विना आत्मानुभव के व्रत प्रत्याख्यान कुलमर्यादा अथवा लोक रूढी मे पाले जाते है। व्रत प्रत्याख्यान शरीर का धर्म नहीं है परन्तु आत्मा को आतर स्थिति बताने वाले है। वेष, भाषा, ज्ञान और विद्वता सच्चे त्याग के लक्षण नहीं है। आंतर वासना

का नाश हुए विना कोई भेष या अवस्था बाह्य रूपेण धारण की जाय, वह दबी हुई अग्निवत् उपशांत मात्र है, निमित्त पाकर उसका पुनः उदय होता है।

व्रत प्रत्याख्यान की असर जीवन की समस्त प्रवृतियों मे हो, वही त्याग व्यवहार सत्य है। यदि व्रत प्रत्याख्यान की असर जीवन पर न हो तो वे व्रतादि प्रायः सत्य नहीं हो सकते। त्यागके अभाव मे मानव मानवता का त्याग कर पाशवता प्रकटाता है। ज्यों ज्यों त्याग की मात्रा बढती है त्यों त्यों पाशवता का नाश होकर मानवता प्रकटती है।

पशुत्व, मनुष्यत्व, देवत्व, ईशत्व आदि में जातिगत फर्क नहीं है परन्तु उपरोक्त भिन्नता त्याग के विकाश पर ही है।

भोग भोगने के लिए मानव भव योग्य नहीं है, चूकि मनुष्य मे सारा सार विचार ने की शक्ति है। अतः निःशंक होकर भोग नहीं भोग सकता। भोग रसिक मनुष्यों को स्वतत्र (स्वछन्द) और निःशंक भोग भोगने के लिए पशु योनि मे पुन, जाना पडता है। वहीं उनकी लालसा पूर्ण होती है। तिर्यच योनि में रात्रि दिन, एकान्त अनेकान्त, इष्ट-अनिष्ट और माता बहिन पुत्री-पिता पुत्र या भाई के भेद जाने बिना नि शंक हो भोग भोग कर मानव भव में रही हुई अपूर्ण विषय वासना को पूर्ण करते हैं।

विषय वासना का सकल्प बल (प्रवल इच्छा) द्वारा जीव उचित दिशा मे, उचित जीवायोनि में जन्म धारण करके विषय वासना का संकल्प पूर्ण किया जाता है।

त्याग के अभाव में मनुष्य को अधम वासनाओं की प्रबल इच्छा होती है और भोगोपभोग के लिए तरसते रहते हैं।

भोग की वासना पूर्ण करनेके लिए मृत्यु के बाद पूर्ण पशुता (पशु योनि) प्राप्त करता है।

त्याग प्रत्याख्यान के बिना का भोगी मानव स्वार्थीध होता है वह कुटुंब समाज या देश का कल्याण कर नहीं सकता। कुटुंब की प्रति पालना के लिए भी तप और त्याग की आवश्यकता होती है। मात पिता सन्तान के लिए अनेक कष्ट उठाते है, अपना सर्वस्व देकर सन्तान की सेवा करते है तो वे अच्छे माँ बाप माने जाते है। आदर्श नागरिक कहलाने के लिए भी संयम की परमावश्यक्ता है। विश्व की दृष्टि मे भी बिना संयम के अच्छा नागरिक अच्छे मात पिता कुटुम्बी, या आदर्श त्यागी साधु समझा नहीं जाता। वर्तमान मे प्रजा विलासी व मोज शोक मे मानने वाले माँ बाप को माँ बाप या राजा को राजा मानने भी तैयार नहीं है। जितने प्रमाण मे संयम की मात्रा अधिक होगी उतना ही अच्छा गृहस्थ या आदर्श त्यागी कहलायगा। अच्छे होने के लिये साधु या संसारी हर एक को अपनी स्थित्यनुसार त्याग और प्रत्याख्यान की आवश्यक्ता है। संयम वृत्तिवाला सुन्दर गृहस्थाश्रम चला सकता है, चाहे वह राजा हो या रंक, सभी को संयम वृत्ति का शरण लेना पडता है। संयमी जीवन के अभाव मे साधु जैसे अपने पद से च्युत होता है वैसे गृहस्थ भी अपने पद से पतीत होकर गृहस्थाश्रम के राज्याधिकार के और माँ बाप के पवित्र कर्तव्य से च्युत होते है। योग्य माँ बाप होने के लिये पशु-पक्षी भी अपने सन्तान की प्रति पालना स्वयं भूख दुःख सहकर भी करते है।

त्याग ही इस लोक एवं परलोक में परम सुख का स्थान है।

४–प्रमाद ।

आत्मा की आभ्यतर अवस्था स्वाभाविक शुद्ध उपयोगमय है, इससे विपरीत स्वानुभव से चलित स्थिति को प्रमाद कहा है। लश्कर में प्रमाद करने वाले घोडे या सिपाही को बन्दूक से उडा दिये जाते हैं। तो आत्म धर्म मे प्रमाद करने वालों की क्या दशा हो ? पार्श्वमणी का लोहे के साथ समागम करने मे क्षण मात्र का प्रमाद क्रोड़ों का नुकसान करता है तो आत्म धर्म रूप पार्श्व-मणी के समागम में प्रमाद होने से कितना नुकसान हो ?

धर्म कार्य आज नहीं करके कल करने वाला प्रमादी आत्म-धर्म को सदा के लिये खो देता है और कल के बदले मे आज करने से आत्म धर्म की अनन्त काल के लिये रक्षा होती है।

प्रमाद दशा में कर्तव्याकर्तव्य का भान होने पर भी प्रमाद के नशे में अकर्तव्य सेवन होता है। मानव प्रगति मे प्रमाद जैसा अहित कर शत्रु अन्य कोई नहीं है। मनुष्य से प्रमाद दूर हो तो परमात्मत्व प्रकट हो जाय। प्रमाद का नशा इरादा पूर्वक कर्तव्याकर्तव्य का भान भूला देता है। प्रमाद ही वर्तमान सयोगों मे सन्तुष्ट रह कर आगे बढने मे बाधक है। प्रमाद ही प्रगति पथ मे अनेक बाधक सलाह देता है।

जीव का अधिक पतन करने के लिये प्रमाद अपने अनेक मित्रों के साथ आता है और महान् पतन करता है। चार विकथा (स्त्री, खान पान, देश, और राज सम्बन्धी गप्पे), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पांच (इद्रियों के) विषय (स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द), निद्रा, स्नेहादि प्रमाद के अनेक मित्र हैं।

विश्व में कोई तत्व (पदार्थ) स्थिर नहीं हैं। समस्त तत्व पूर्ण वेग से गतिमान हो रहे हैं। इस परिस्थिति मे आत्मा यदि अपनी प्रगति न करे तो उसका पतन होकर अपने मूल स्थान नरक निगोद मे जाता है। प्रमाद पतन की ओर वेग से ले जाता है। प्रमाद दशा मे नरक निगोद की वासना मधुर मानी जाती है। प्रमाद के कारण पिशाचिनी भी अप्सरा मानी जाती है।

आरोग्य घटने का अर्थ रोग का बढ़ना है, वैसे स्वर्ग या मोक्ष के अभाव में नरक निगोद की ओर पदार्पण होते हैं।

प्रमाद और मदिरा मे कोई फर्क नहीं है। प्रमाद की असर धीरे २ अप्रकट और गुप्त रीत्या होती रहने से मनुष्य की समझ मे नहीं आता, परंतु मदिरा का परिणाम प्रत्यक्ष होने से लोग उससे सावधान रहते हैं। शराब के नशे के लिये सावधानी का समय निकट आता है, जब प्रमाद करने वाला सावधानी के समय का अनादर करता है।

५–ज्ञान व समकित

ज्ञान—चन्द्र सूर्य तथा तारे लाखों मील ऊचे दूर होने पर भी इतना प्रकाश देते है, तो ज्ञान का प्रकाश कितना अधिक हो, यह सहज समझमे आ सकता है। चन्द्र सूर्य के प्रकाश को सामान्य बद्दल तथा धूली भी दबा सकती है, परन्तु आत्म ज्ञान का प्रकाश दबाने कोई भी समर्थ नहीं है। ज्ञान दशा के अभाव में स्थावर विकलेन्द्रिय और अज्ञानी जीव जैसी दयापात्र दशा संज्ञीकी भी हो जाती है।

जिसके पास पार्श्वमणी है वह मेरु जितने सोने के पहाड़ को भी पत्थर तुल्य मानता है, वैसे ही ज्ञान होने पर देव व मानव के उत्कृष्ट भोग भी रोग तुल्य समझे जाते हैं। जो ज्ञानी होता है वह आत्मा में रमण करता है। बिना ज्ञानका मानव चमडे का मनुष्य जैसा अज्ञ माना जाता है।

रसायण शास्त्री विविध प्रयोग न करे तो उसका ज्ञान निरर्थक है, वैसे ज्ञानवत् आचार न हो तो ज्ञान की कीमत ही क्या! रेल्वे के पुल नीचे होकर क्रोडों मण पानी बह जाता है। किन्तु पुल को बिन्दू मात्र स्पर्शता नहीं है, वैसे ही बिना आचार का ज्ञान लाभदायी नहीं है।

सूर्य के प्रकाश के अभाव मे वनस्पति के पौधे मुरझा जाते हैं, वैसे ज्ञान के प्रकाश के अभाव मे आत्मगुण के पौधे नष्ट होते है ज्ञान के प्रकाश द्वारा आत्मगुण प्रति समय अधिकाधिक बढ़ता जाता है।

ज्ञान अग्नि तुल्य है। जैसे अग्नि अपथ्य को पथ्य और अपक्व को पक्व बनाती है, वैसे ज्ञान प्रतिकूल सयोगों को अनुकूल और विषम भाव को समभाव बनाता है।

शरीर बल की अपेक्षा इद्रिय बल मे और इद्रिय बल से ज्ञान बल मे अधिक सामर्थ्य और आनन्द है। इसीलिये सत्यज्ञानी ज्ञान को आचार (चरित्र) मे रखने क्षण मात्र का प्रमाद नही करता, जैसे तृषातुर जल प्राप्ति मे। दावानल देख कर वहां से दूर न जाने वाला पंगू जैसे जल कर भश्म हो जाता है, वैसे ज्ञान मुजब वर्ताव (चरित्र) न करने वाला ज्ञानी होने पर भी सद्गति का अधिकारी नहीं हो सकता। अधे का दौड़ना जैसे निर्धारित स्थान पर पहुँचने मे असफल होता है उसी प्रकार ज्ञान बिना की क्रिया भी असफल रहती है। ज्ञान और क्रिया मोक्ष गति रूप रथ के दो पहिये तुल्य है।

समकित--चौथा गुण स्थान (सम्यक्त्व) अर्थात् अतरात्म भाव आत्म मन्दिर का गर्भ द्वार है। जिसमे प्रवेश करके उस मन्दिर मे वर्तमान परमात्मा भाव रूप निश्चय देव (निजात्मा) के दर्शन किये जा सकते है, जैसे कैदी कैद खाने से छुटने की नित्य चिंता करता है और अपने साथी कैदियों से सदा उदासीन रहता है वैसे समदृष्टि आत्मा अपने आप को ससार का कैदी समझ कर ससार से मुक्त होने की भावना से भोग परिवार मे अनासक्त बना रहे। फांसी पर लटकने तैयार व्यक्ति की अनासक्त मनोदशा ससारस्थित समदृष्टि की होती है। कुष्ट रोगी रोग मुक्त होने मे जितना प्रयत्न शील होता है, समदृष्टि जीव कर्म क्षय होने पर्यन्त उससे भी अधिक प्रयत्न शील रहता है, आराम की नींद नहीं सोता।

समदृष्टि को अपनी देह पर भी ममत्व नहीं होता तो अन्य किस पर ममत्व हो सकता है ? राग द्वेष के प्रबल साधनों मे भी समदृष्टि अडोल रहे। समदृष्टि की व्यवहार प्रवृत्ति मे भी अलौकि-

कता हो। देह धर्म की तरह आत्मधर्म प्रत्यक्ष और अनिवार्य प्रतीत हो, तब समकित प्राप्त हुआ मानना चाहिए। राग-द्वेष एवं मोह का नाश न हो वहाँ तक समदृष्टि को चैन नहीं होना। समदृष्टि को वीतराग सुख के अलावा शेष सब दु ख प्रतीत होता है। समदृष्टि देह मय नहीं किन्तु आत्म-भाव मय होता है। देह मय दशा है, सो मिथ्यात्व दशा है।

६-पंच-महाव्रत

१ अहिंसा-

अहिंसा की आस पास १०० कोसो मे समभाव फैलता है। अहिंसक के पास क्रूर प्राणी भी दयालु बनता है तो समझ शक्ति वाला मानव वैर वृत्ति को भूले जिसमे आश्चर्य ही क्या ?

जितने अंश मे समदर्शिता हो उतने ही अश मे अहिंसा और विषम भाव मे हिंसा है। अहिंसक समदर्शी पत्थर का उत्तर गुलाब से देता है। विषय कषाय का विजय ही अहिंसा व तप है। अहिंसक, अहित करने वाले का भी हित करने का प्रयत्न करता है। हिंसक अपनी वृत्ति नहीं छोडता तो अहिंसक जीव अपनी अहिंसा वृत्ति क्यों छोडे ? मानव पूर्ण रूप से अहिंसक, पूर्ण क्षमावान न हो वहां तक वह पूर्ण मानव नहीं है और जितनी अपूर्णता है उतनी पशुता है। नट की डोर से भी अहिंसा की डोर अति सूक्ष्म है। हिंसा पिशाच वृत्ति है। और अहिंसा परमात्म वृत्ति है। समभाव से संकट सहना अहिंसा का राज पथ है। कुविचार, दोप दृष्टि, अविचार से उत्तर देना, हिंसा है। किसी पर

सत्ता स्थापन करके आज्ञा में चलाना भी हिंसा है, पर लघुता व स्वप्रशंसा भी हिंसा है। निज मान को छोड़ कर भी शत्रु का मान वढ़ाने मे अहिंसा धर्म की रक्षा है। अहिंसा धर्म की रक्षा के लिये अखण्ड जागृति रखनी चाहिए। अहिंसक को शत्रु नहीं होते "शठ प्रति शाठ्य नहीं, परंतु सत्यं 'कुर्यात्' अहिंसा अर्थात विश्वव्यापी प्रेम, पुत्र पुत्री के अपराध बिना शर्त के माफ किये जाते है, वैसे अहिंसक पुरुप विश्व को अपना मानकर सब के अपराधों की उदार भाव से क्षमा देवे। अहिंसा के पालन मे अत्यन्त धैर्य और शौर्य की आवश्यकता है। अहिंसा समझ मे आवे तो उभय लोक मे वह चिन्तामणि रत्न तुल्य सुख देता है।

किसान खेती के विकाश के लिये, वर्षा के पानी के प्रहार को सहर्ष झेलता है। वसे अहिंसक अपनी खेती (अहिंसा) की प्रगति के लिये समस्त प्रकार के प्रहारों को सहर्ष झेले। कष्ट भोगने वाले की अपेक्षा कष्ट देने वाले को अधिक कष्ट सहना पडता है। अहिंसा व्रत का आराधक किसी किसी निमित्त से लघुता नहीं करे। जीवन के भोग से माता अपनी सन्तान की रक्षा करती है, वैसे अहिंसक विश्व माता बनकर अपने जीवन भोग ने विश्व की रक्षा करे। अहन्ता का सर्वथा नाश ही अहिंसा है। शत्रु को भी सुखी देखने की भावना ही सत्य अहिंसा है। वैरियो को वश करने का सर्वोत्तम शस्त्र अहिंसा ही है।

सत्य—

हजारो सूर्यों के प्रकाश मे सत्य का प्रकाश विशेप है। और लाखो राहुओं से अधिक अन्धकार असत्य का है। सब सद्गुणों का सत्य मे और सब दोपों का असत्य मे अन्तर्भाव होता है। जिसमे अहङ्कार का आत्यन्तिक नाश हुआ हो, वही सत्य मूर्ति

हो सकता है। सत्याचारी-सदाचारी सदा नम्र होता है। वह अपनी त्रुटियाँ प्रतिदिन समझता जाता है। विचार वाणी और वर्तन में सत्य होना चाहिए। सत्य समुद्र समान है। उसमें समस्त गुण रूप नदियां आमिलती है। प्रत्येक श्वाच्छोच्छ्वास में सत्य का समावेश रहना चाहिए। जहाँ सत्य का वास है वहीं परम आनन्द है।

निज प्रशंसा से प्रसन्न होना भी मृषावाद है। परभाव वाली भाषा बोलना निश्चय से असत्य है। स्वस्वरूप में स्थिर होना निश्चय सत्य है। आत्मा को स्वभाव से चलित करना निश्चय असत्य है। अपने गुणों को प्रकाशित करना मृषावाद है। सत्य के ध्येय बिना मानव का जीवन पशु तुल्य है।

अचौर्य—

अस्तेय व्रत पालन करने वाले को बहुत नम्र विचारशील बन कर अति सावधानी से रहना चाहिये। जैसे रोगी अपना रोग घटाने का तहदिल से यत्न करता है, उसी प्रकार अस्तेय व्रत का आराधक अपनी आवश्यकताओं को घटाने में प्रयत्नशील रहे। जरूरत से ज्यादा अन्न, वस्त्र, मकान, धन या अन्य वस्तुओं का संग्रह रखना चोरी है। विषय कषाय का सेवन निश्चय से चोरी है। स्त्री पुरुष के अङ्गोपांग विकार दृष्टि से देखना भी चोरी है। चोर जबरदस्ती से धन लूट जाते हैं, जिसको लोग बुरा समझते हैं। आश्चर्य है कि अज्ञानी आत्मा आत्मिक धन लुटाने के लिये विषय कषाय चोरों को निमन्त्रण देते हैं।

ब्रह्मचर्य—

आत्मा के शुद्ध स्वरूप मे विचरने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। अर्थात् जीवन स्पर्शी पूर्ण संयम पूर्ण आश्रव निषेध वह ब्रह्मचर्य है।

आत्म स्वरूप के विचार के अलावा सब व्यभिचार है। पाँच इंद्रियों के २३ प्रकार के विषयों मे आसक्ति सो व्यभिचार है और इन्द्रियों के विषयों का सयम, वह शील है। "समभाव सो शील और विषम भाव सो व्यभिचार"।

ब्रह्मचर्य का अर्थ मात्र कायिक पवित्रता रखने का करना पाई के लिए रुपये का बदलना है। सदाचारी मनुष्य अपनी स्त्री के साथ भी भोग दृष्टि नहीं रखता। 'मनुष्य के गुलाम बनो पर विषयी मन के गुलाम मत बनो" निसंशय मानव की सब से विशेष मूल्यवान सपत्ति ब्रह्मचर्य है। जैसे, फूटा लेम्प हो तो तेल नीचे से ढुल जाता है अन्यथा ऊँचा चढ़ कर प्रकाश देता है, वैसे ही ब्रह्मचर्य क अभाव मे आत्मतेज आत्म प्रकाश का नाश होता है, और उसके पालन से आत्म तेज तथा आत्मशक्ति की वृद्धि होती है।

व्यभिचारी पुरुष को पशु कहना पशु का अपमान करना है क्योंकि पशु प्रकृति के अनुकूल सयम रखता है। इतनी सयम वृत्ति मनुष्य नहीं रखता है।

एक बर्तन मे लोहू, मांस, हड्डियाँ, चमड़ा, वीर्य मलमूत्र, पीप आदि भरे हुये हैं, उस पर थूकनेमे भी अरुचि होती है। इन्हीं पदार्थों का समूह रूप स्त्री पुरुष के शरीरों की रचना है। उस पर ज्ञानी समझदार विषय जन्य राग दृष्टि कैसे रख सके!

परिग्रह—

मोह राजा कहता है, कि मैंने अपनी समस्त शक्तियाँ परिग्रह के पीछे खर्च की हैं, परिग्रह के पीछे मेरा समस्त सैन्य है।

परिग्रह बढाने के लिये मेरे समस्त सैनिक लोभी को प्रेरणा करते हैं और वह लोभी फुटबोल की तरह धन के लिये चारों दिशा में भटकता फिरता है।

कांदे व लहसुन की खेती में कपूर केशर और कस्तूरी का खात डाला जावे और सुवर्ण की झारी से दूध सिंचन किया जाय तो भी वह अपना स्वभाव नहीं छोडेगा। वही दुर्गन्ध मय कादे व लहसुन होवेगा उसी प्रकार अनीति से प्राप्त धन का कोई विचार-शील पुरुष भी शायद ही सद्उपयोग कर सके।

श्रीमन्त होने मे या श्रीमन्त पुत्र होने मे हर्ष मानते हो परतु वह धन कितने पाप से एकत्र हुआ है, उसका विचार करते हो ? दुनियां में धन के कंकर चुगते चुगते आत्म गुण के हीरे गवाओगे क्या ? धन का नशा मदिरा से भी अधिक भयंकर है, उस भयंकर नशे वाला (धनवान) क्वचित् ही धर्म के सन्मुख रह सकता है। परिग्रह से ज्ञान के स्थान मे अज्ञान की, धर्म के स्थान मे अधर्म की और मोक्ष के स्थान बन्ध की प्राप्ति होती है। बुद्धि-मान् खुद को धन का मालिक नहीं परतु धन का ट्रस्टी मात्र मा-नता है। और अपनी समस्त सम्पत्ति का विश्वहित के लिये अच्छे से अच्छा उपयोग करता है। पैसा मनुष्यों के बीच भेद भाव के विचार खडे करता है। विषय विलास मे व्यय होने वाला धन किसी जुल्मी राजा ने दंड रूप गले मे बांधी हुई सुवर्ण की शिला तुल्य है। पैसा मनुष्य प्रेम का व मानव धर्म का नाश कराता है। धन का उपयोग विकाश के मार्ग मे होना चाहिये। जिससे आत्म धर्म का विनाश न हो। इस लिये नित्य सावधानी रक्खे।

७—मौन ।

मौन धारण करके जो अपने जीवन को कछुए की तरह गुप्त बना लेता है, वही सच्चा साधक है, वह विश्व के लिये महाउपकारक है। इस प्रकार जीवन को गोंप कर मौन धारण करने वाला सत्य संचालक जीवन मुक्त सर्वथा अहंभाव रहित सम्पूर्ण शुद्ध व्यक्तित्वशाली महत्त्वाकाक्षा रहित हो वही विश्व का हित कर सकता है।

आत्मिक योग्यता बिना शब्दोचार किये हुये प्रकाशित होती है। बोलने की अपेक्षा मौन विशेष प्रभावशाली है। बचन की शक्ति मर्यादित है और मौन की शक्ति अमर्यादित है। मौनी स्वाधीन है, और बोलने वाला पराधीन है। मौन कार्यकर्ता सब से बड़ा सफल सेवक है। प्रत्येक कार्य मौन से विशेप प्रकाशित और प्रभावित होता हैं जो नम्र है, वह गुपचुप अपना काम करके भी मौन रहता है, और अभिमानी अपने थोडे कार्य का बड़ा बिगुल फूंकता है।

मौन अध्यात्म पथ पर लेजाने वाला पथ प्रदर्शक है। पांच इन्द्रियां, मन और चार कषाय, एसे दश का संयम पूर्वक मौन धर्म का पालन करें।

मौन व्रत का अङ्गीकार करने वाला सर्व क्लेशों से दूर रह कर परम शांतिमय जीवन बिताता है।

८—कर्म

प्रभु महावीर ने कर्म के महानियम का विश्व को भान कराया हैं। जीवात्मा पर अन्य कोई सत्ता चल नहीं सकती। स्वय अपने शुभाशुभ कर्मानुसार शुभाशुभ फल भोगते है। कर्म फल देने वाली आत्मा के सिवाय अन्य कोई भी सत्ता नहीं हैं। स्वर्ग नर्क संसार और मोक्ष आत्मा अपने आप बनाता है। अन्य किसी सत्ता के अवलम्बन की उसे आवश्यकत्ता नहीं है। पराई कृपा या अकृपा आत्मा के हिताहित (कर्म फल) में कोई फेर फार नहीं कर सकती। आत्मा ही अपने हिताहित का कर्त्ता है व भोगता हैं। निर्बल मनुष्य को अपनी सत्ता मे विश्वास नहीं होता है। जिससे वह अपने से कोई महान् सत्ता की कल्पना करके उस के चरणों में अपना सिर झुकाता है। और इस संसार के दुःखों से वचने के लिये उसकी कृपा के लिए दीनता से याचना करता है। ऐसी याचक वृत्ति ईश्वर को सुख दुःख के दाता मानकर स्वय दीन और पुरुपार्थ हीन बन जाता है।

इस प्रकार का पामर जीवात्मा अपना पतन और अहित करता है। और स्वय सर्व शक्तिमान् होने का भान भूल कर ईश्वर की कल्पना करके याचना करने में ही अपना दीन जीवन पूर्ण करता है, तथा प्राप्त सयोगों और सामर्थ्यों को व्यर्थ गंवाता है। इस पामर वृत्ति से विश्व की रक्षा करने के लिए प्रभु महावीर ने कर्म सिद्धान्त समझा कर जगत जीवो का अनन्त उपकार किया है। प्रभु महावीर ने सत्य को ही (कर्म का नियम) कहा है। कर्मो के साथ ही सदा उसका फल रहता है।

समाज सरकार और संघ के नियम तोडे जा सकते ह। परतु कर्मों के नियम कुदरती सत्य (ध्रुव) होने से उसको तोड़ने के लिये

समर्थ नहीं है। समाज और सरकार के नियम तोड कर मनुष्य भग सकता है छिप सकता है, किन्तु कर्मों के नियमों को तोड कर वह कहीं नहीं जा सकता है। उसे अपने किए कर्मों का फल भुगतना ही पडता है। अच्छे कर्म करने के लिये कर्म के नियम बाध्य नहीं करते, इच्छानुसार कर्म करो। सुख के बीज बोवो या दुख के कर्म तो कुदरत के नियमानुसार बोये हुये बीज की तरह फल देते रहेंगे। कर्म किसी पर दया या मरहबानी नहीं करते। उसे सिर्फ न्याय और सत्य प्रिय है जिससे किसी की आजीजी या प्रार्थना नहीं सुन कर अपने अचलित नियमानुसार तीन लोक मे अपना शासन प्रर्वताते हैं।

राग द्वेष का परिणाम सो भाव कर्म और पुद्गलों का आत्मा के साथ मिलना सो द्रव्य कर्म है। प्रथम भाव कर्म और उसके परिणाम रूप द्रव्य कर्म है। कर्म परिणाम राजा के समान है। उसकी आज्ञा से जीव चौरासी लाख जीवयोनि मे भटकते है। कर्म मदोन्मत्त राजा है, वह किसी की प्रार्थना नहीं सुनता। कर्म अपने अटल नियमानुसार किया करता है। कर्म प्रार्थना नम्रता क्षमा आदि किसी तत्त्व को महत्ता नहीं देता वह अपना कार्य करने मे मस्त है। कर्म राजा दुखियों के दुःख को सुनने मे बहिरा और देखने में अन्धवत् रहता है। कर्म राजा जगत के जीवों को तृण तुल्य मानता है, उसमे दया नहीं है, पर न्याय है। न्याय के बिना वह एक पर भी नहीं रखता, वह निष्पक्ष न्याय करता है। कर्म की आज्ञा का पालन सब को अप्रमत्त होकर करना पड़ता है। इसके लिये अपील का स्थान नहीं है, यही उसकी अन्तिम कचहरी है। उसमे दिये हुए फैसले को भी किन्ही संयोगों मे कभी भी नहीं बदल सकते। कर्म की कचहरी में रिश्वत या सिफारिश नहीं चलती, सजायाफ्ता शिक्षा भोगने योग्य है या अयोग्य, उसमें

शक्ति है या नहीं, सह सकेगा या नहीं, उसका लेश-मात्र विचार किये बिना सजा फरमा देता है। कर्म राजा मानता है कि जिसमें कर्म बांधने की शक्ति थी, उसमे भोगने की शक्ति होनी ही चाहिये। कर्ज ली हुई रकम व्याज सहित चुकाना ही चाहिये।

कर्म का राज्य विशाल है, विविध स्थान मे विविध रूप मे अदला बदली करता है। कर्म विविध प्रकार के रूप धारण करा कर जीवों को सुखी तथा दुःखी बनाते हैं। विविध जीवयोनियों में विविध भेष धारण कराये जाते हैं। यह विश्व कर्म की आज्ञा द्वारा जीवों को नचाने की रंग भूमि है। मोक्ष सिवाय अखिल ससार मे सर्वत्र कर्म का ही राज्य है।

टकोरें और उसके अवाज को पृथक् नहीं कर सकते, वैसे ही कर्म और उसके परिणाम को पृथक् नहीं किया जा सकता। कर्म वर्तमान मे है और उसका परिणाम भविष्य मे है। वर्तमान भूत और भविष्य एक ही काल के तीन अभिन्न टुकडे हैं, ऐसे ही कर्म का प्रेरक कारण कर्म और कर्म का परिणाम एक ही प्रवृत्ति के टुकडे हैं।

जैसे गाडी मे इच्छानुसार पसन्दगी के दर्जे वाले डिब्बे (First, second, Third & Inter) मे मनुष्य बैठता है वैसे ही देव, मनुष्य और तिर्यंच गति की इच्छानुसार टिकट ली जासकती है। वहीं पहुंच सकते है, कोई बलात्कार नहीं करता। स्वेच्छा-पूर्वक वहा जाने की सामग्री एकत्र की जाती है और वहां जाया जाता है। प्रतिक्षण उस गति की ओर गमन हो रहा है, परतु अज्ञान वश जीवात्मा को अपनी गमन क्रिया का भान रहता नहीं है। हमारी मरजीके विरुद्ध हमको अन्य गति मे लेजाने मे कोई कर्म समर्थ नहीं है। 'मागे विना कुछ नहीं मिलता' इस न्याय से हम चाहते

है, वैसी ही गति मिलती है। अज्ञान के योग से मांगने का (चाहने का) जीव को लेश मात्र भी भान नहीं है। आत्मा की मर्जी विरुद्ध एक भी प्रवृत्ति कराने मे कर्म सर्वथा असमर्थ है।

मनुष्य जिसके लिए योग्य न हो वैसे सुख या दुःख उसे मिल नहीं सकते, उसकी योग्यतानुसार ही सुख या दुःख मिलते हैं। शूली या फासी पर चढने वाला, तोप के सामने खडा रहने वाला, शमशेर से कटने वाला, अग्नि में व पानी मे मरने वाला अपनी कृति का फल पाता है। उसको बोये हुए बीजका फल मिलरहा है।

स्वय किये कर्म भूल जाय या कुदरत के घर मे अन्धेर समझ कर चाहे जसी प्रवृत्ति करे, परन्तु कर्म (कुदरत) की बहियों मे काना मात्रा का भी फरक नहीं पड़ता। जीव स्वयं अपने किये कर्मों से ही अन्धे, बहिर, लूले, गूगे, कोढिये आदि बने हैं। और नये बन रहे है, इनको खुद के सिवाय अन्य कोई नहीं बनाता। अपने अयोग्य कर्म न हो तो इन्द्र भी बाल बाका करने मे समर्थ नहीं है।

कर्म का उदय होना कर्म की पक्व दशा है और वह पूर्व सामग्री मे से विकृति रूप फल उपजाते है। बोया हुआ उगा है, नया कुछ नहीं बना है, न बनने वाला है। होना था सो हुआ, नया कुछ नहीं हुआ है। कर्म कठोर दंड देने वाला कोई देव नहीं है, कुदरत की कानून मात्र है। अच्छे काम का बदला इनाम और बुरे काम का दण्ड हम स्वय मांग लेते है। अच्छे कार्य स्वय सुखानुभव कराते है और बुरे कार्य दुःखानुभव।

हमारे इनाम व शिक्षाओं के उत्पादक हम खुद ही है। आत्मा अपनी वासना को तृप्त करने के लिये तरस रहा है। और जहा तक योग्य स्थान मे जाकर क्षुधा तृप्त न हो वहां तक क्षुधा अथवा

वासना निवृत्त नहीं होती। स्त्री पुत्र और धन की उपादि किसी शैतान ने गले मे फांदी नहीं है, किन्तु जीवात्मा प्रेम पूर्वक ग्रहण करता है। वैसे ही भविष्य की गति भी प्रेम पूर्वक स्वीकार की जाती है और सहर्ष इसमें बदला भी दिया जाता है। अपनी इच्छा विरुद्ध एक अगुल भी आगे बढाने में समर्थ नहीं है। दुर्गति भी उनको जबरदस्ती से खेंच नहीं जाती है। जीवात्मा स्वय दुर्गति में लिये जाने वाले कारणों की तथा साधनों की खुशामद करता है। और उसके योग्य सामग्री एकत्र करता है। तब उसको उस गति मे ले जाया जाता है। जीवात्मा की आजीजी, दीनता, प्रार्थना और बहुत काल की भावना के फलितार्थ दुर्गति का समागम होता है। वैसे ही देव गति का भी। अग्नि पर अगुली रखी जिस से जले-छाला हुआ और पीडा भोगी, उस मे अग्नि का दोप नहीं है। इसी प्रकार जैसे कर्म किये वैसे ही फल मिले। दोष जीव का है, न कि कर्म का। स्वयं शिक्षा पाता है। छाला अग्नि मे हाथ न रख ने के लिये सावधान करता है वैसे कर्म भी प्रति समय सावधान बनाते हैं। वे आकाश दीप(Seaich Light) की तरह उपकारक है।

कर्म दया करके विषयी को रोगी बनाते हैं। अन्यथा अधिक पाप करके पापी दुर्गति मे जायँ, पतंगिये के पास से दीपक उठा लेना उसपर उपकार करना है, इसी प्रकार विषयी को रोगी बना कर विषयों के अनिष्ट का भान कराने मे उपकारक है। लज्जा शील चोर बेडी से शर्माता है विश्व के समस्त प्रसंग (बनाव) कर्म का साक्षात्कार बताते है। शरीर का मैल भी दुखदायी है तो आत्मा का कर्म मैल कितना दुखदायी हो सकता है?

शरीर रूप बर्तन मे डाला हुआ (खाया हुआ) अन्न वात. पित्त, कफ़ हाडमास, लोहू, पीप और मल मूत्र आदि सप्त धातु रूप

बनता है। वैसे एक समय मे बंधे हुए कर्म सात प्रकार में बट जाते है। जीव रूप भार वाहक कर्म रूप भार भर कर चौरासी लाख जीवयोनि मे अनन्त काल से परिभ्रमण करते हैं।

जितने कर्म अधिक उतनी काया संकुचित, निगोदवत्। ज्यों कर्म कम होते जाते है, यों काया की सकुचितता दूर होती जाती है। जैसे—प्रत्येक स्थावर. बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय, पचेन्द्रिय आदि। निर्बल आत्मा कर्म से पराजय पाते है और सबल आत्मा कर्म को पराजित करते है।

उदयमान कर्म निमित्त मिलाते है, परन्तु वैसा करने के लिये आत्मा को प्रेरणा नहीं करते। यदि प्रेरणा करे तो आत्मा के पास आत्म सामर्थ्य ही न गिना जाय। निमित्त की सत्ता के आधीन होने वाले का पतन होता है। निमित्त के आधीन सबल आत्मा निमित्तों को फेंक देते है। और निर्बल आत्मा उसके आधीन होते है। एक समय का सकल कर्मों का विजय अनन्त समय का विजय है। और एक समय की हार लम्बी हार है। बड़ के बीज का वट वृक्ष होने के बाद विजय दुष्कर है। वर्तमान मे तो मात्र बड के बीज का विजय करना है बीज जैसे छोटे कर्मों से हारने वाले को पुनः बड़ के साथ युद्ध के लिए तैयार होना पडेगा। कर्मों के निमित्तों से ज्ञानी नहीं ललचाता, मात्र अज्ञानी ललचाता है। ज्ञानी कर्मयोग से तृण की तरह उड़ा करता है और ज्ञानी हमेशा स्थिर रहते है।

आश्चर्य की बात है, कि भूतकाल के कर्म वर्तमान मे भोगे जाते है फिर भी नये कर्म बांधने में प्रमाद नहीं किया जाता। कर्म के नियमों को विश्व समझे या न समझे तथापि वे अपना शासन

विश्व पर चला रहे हैं। और विश्व को उसके आधीन होना ही पडता है, जन्म मरण बन्धे हुए कर्मों को भोगने के द्वार हैं। और उसके द्वारा एक गति में से दूसरी गति में ले जा सकते है।

मकान बांधने में जितनी मुश्किली है उतनी तोड़ने मे नहीं, वैसे ही कर्म बांधने मे जितना कष्ट है उतना तोडने में नहीं। बालक माँ बाप को डरावे जिससे माँ बाप भय नहीं पाते। वैसे कर्म हमारे बालक है हमने उनको जन्म दिया है, ऐसे संयोगों मे ज्ञानी आत्मा अपनी कर्म सन्तान से भय नहीं पावे। कर्म बांधने में अनन्त काल गया. तोडने मे इतने समय की जरुरत नहीं है, क्यों कि आत्मा कर्म से अनन्त बलवान है।

कर्म बन्ध देखने में नहीं आता. किन्तु विपाक (कर्म फल) अनुभव में आता है। जैसे दवाई शरीर मे क्या क्रिया करती है, यह देखने में नहीं आता परन्तु उसका परिणाम जाना जाता हैं। इन कर्मों से सब कर्म वेदनीय (फल देने वाले) हैं। अन्य कर्मों का वेदन लोक प्रसिद्ध रूप से नहीं होता. वेदनीय कर्म का फल सुख दुःख लोक प्रसिद्ध होने से वेदनीय कर्म प्रथक् गिना है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, ये चार घाती कर्म हैं। शेष चारों अघातीय हैं। घाती कर्म का सम्बन्ध आत्मिक गुणों के साथ है और अघातीय कर्मों का सम्बन्ध शरीर के साथ। घाती कर्म जितने बड़े हैं उतने ही यत्न पूर्वक नाश होने वाले भी हैं। घाती कर्मों का क्षय होने के बाद अघातीय कर्मों का क्षय होता है। घाती कर्म यत्नों से नाश होते हैं। 'ज्ञान' नहीं आता हो तो परिश्रम से सीखा जा सकता है, 'दर्शनावरणीय' निद्रा आती हो तो यत्न से उड़ाई जा सकती है। 'मोहनीय' कषाय का उदय हो तो भावना से या दृढ़

भावना करने से कषायों को रोके जा सकते है। पुरुषार्थ से अन्तराय कर्म का भी नाश हो सकता है। परन्तु अघाती कर्म वेदनीय आदि भोगने ही पडते है। भावना आदि से वेदनीय कर्म नष्ट नही होते। आयुष्य मे घट बढ नहीं हो सकता। नामकर्म—शरीर के रूप रंग तथा स्वरूप मे भी परिवर्तन नहीं हो सकता। गोत्र कर्म—नीच कुल मे जन्मा हुआ उच्चकुल का नहीं गिना जा सकता। इस प्रकार घाती कर्म का नाश स्वाधीनता पूर्वक शीघ्र हो सकता है, किन्तु अघाती कर्म तो भोगने ही पड़ते हैं। आयुष्य कर्म की प्रकृति उसी भव मे वेदाती है। शेष कर्मों की प्रकृति उसी भव मे या अन्य भवों में भी वेदाती है।

योग और कषाय पर कर्म का आधार है। किसान, सुथार, लोहार, मोची, दर्जी आदि कायिक श्रम करने वाला मजदूर वर्ग मे योगों की अधिक चपलता होती है और उनमे योग चपलता के कारण कषायों की मन्दता होती है। जब गद्दी तकिये पर बैठकर आराम करने वाले व्यक्ति या कुर्सी टेबल पर बैठे रहने वाले वकील जज या अन्य अफसरो के योग शरीर आदि शांत स्थिर होते है और स्थिरता के प्रमाण से उनमे कषायों की तीव्रता होती है। ऐसे जीवों के कर्म बन्ध मे कार्य भिन्नता से बन्ध भिन्नता होती है।

प्रदेश में कर्म की विशेषता होने पर अनुभाग अल्प हो सकता है. जैसे आकाश मे घने बादल चढ आने पर भी मात्र थोड़े छींटे होकर रह जाय वैसे कर्म भोगने मे जैसे चेचक, जो दिखने मे भयंकर है, पर वह अल्प अशाता का फल देकर रह जाता है। ऐसे रोगियों के लिये योगों की अशुभ प्रवृत्ति विशेष और कषाय की मन्दता के कारण उस प्रकार के कर्म उदयमान होते है। इससे विपरीत योग

की मन्दता और कषाय की तीव्रता वाले जीव को मधु प्रमेह, दाह ज्वर, पेट शुल, मस्तक शुल आदि रोग होते हैं। जिन रोगो के कारण शरीर निरोग दीखे और रोगी भयकर असह्य मरणांत वेदना और कष्ट भोगते हैं।

वर्तमान मे योग (मन, वचन और काया) के प्रति विशेष लक्ष दिया जाता है, योगों से सावद्य प्रवृत्ति न होने के लिए सावधानी रखी जाती है। परन्तु कषायों की चपलता एव तीव्रता के लिये, कषाय विरोध के लिये अत्यल्प लक्ष दिया जाता है। योग मय पाप प्रवृत्ति के लिये लक्ष दिया जाता है, इसका क्रोडांश भी कषाय जन्य पाप के लिये लक्ष देने में आवे तो समाज तथा सम्प्रदायों में विशेष शांति मालूम हो। योगों के सवर की तरह कषायों का सवर किया जावे तो अल्प कर्म वन्ध हो, और अन्त मे जीव कर्म रहित भी हो सके सब कर्मों में मोहनीय कर्म प्रधान है। कषायों के नाश से शेष सब कर्मों का नाश होता है और कर्मों का नाश से आत्मा कर्म रहित स्वस्वरूपी सिद्ध वन सकता है।

९—वेदनीय।

वेदनीय कर्म अघाती है। क्यों कि चाहे जैसी वेदना को ज्ञानी अपनी समझ कर वेदते नहीं है। दु ख त्रास क्लेश अपमान आदि अशाता के सयोगो मे ज्ञानी शाति वेदते है। कर्मोदय को निर्जरा मानते है, खुश होते हैं, इसलिए अघाती है। सयोगो को सुखदायक या दु:खदायक मानना मोहनीय की सत्ता है।

वेदनीय काल में दवाई अपना असर दिखाती है, वैसे दवाई उत्पन्न होने मे हुई पाप वृत्ति-आरंभादि क्रिया भी अपना असर पहुँचाती है। वेदनीय काल में समझदारी आती है, अनित्यता के अच्छे २ विचार आते हैं और मोहोदय के समय सब भान भूला जाता है। वेदनीय कर्म का डंख विच्छू जैसा है जो खुद आराम की नींद सो नहीं सकता, न दूसरे को सोने देता है। वैसे वेदनीय के उदय से स्वयं आकुल व्याकुल बनता है और दूसरों को भी गभरा देता है।

मोहनीय का डख सर्प दश सा है। सर्प दंश वाला जीव अपनी वेदना व भान भूल कर घेन की नींद लेता है। उस वक्त उसको नीम के पत्ते का कडुआपन भी मालूम नहीं होता। वैसे मोहाधीन जीव मोह मे आसक्त बनकर मोह वर्धक दुःखदायी संयोगों को परम सुखधाम समझकर उसके लिए दिन रात दौड़ धूप करता है और उसके अभाव मे रोता है, दुःख मानता है, शोक करता है। अज्ञानियों की समस्त प्रवृत्ति वेदनीय के संयोग घटाने की और मोहनीय के संयोग बढाने की होती है। वेदनीय से मोहनीय की भयंकरता अधिक है। यदि यह समझ मे आवे और वेदनीय के लिए जितने प्रयत्न किये जाते हैं, उतने मोहनीय के मिटाने के लिए किये जाय तो जीव शीघ्र मोक्षगामी हो सके। वेदनीय के संयोग निर्जरा का कारण है और मोहनीय के संयोग सिर्फ बन्ध हेतु-अनन्त संसार भटकाने वाले हैं।

१० — मोहनीय

हिताहित का भान न होने दे वह मोहनीय, शारीरिक रोग के ऑपरेशन के लिए क्लॉरोफार्म की आवश्यक्ता है, वैसे मोहजन्य रोग दूर करने के लिए ज्ञान रूप क्लॉरॉफॉर्म की आवश्यक्ता है। घूमने से थकावट हो और थकावट से निद्रा आवे, वैसे जीवों को ८४ लाख जीवायोनिंयें भटकने से थकावट लगी है और जीव यहाँ अपना मान भूलकर मोहनिद्रामे नींद ले रहे हैं। मोह अग्नि मे अखिल विश्व जल रहा है। वेदनीय से मोहनीय की सत्ता अति सूक्ष्म और भयकर है। मोह की तीव्र प्रबलता के पहाड नीचे समस्त विश्व दब रहा है। उसके लिए आँख ऊँची करने भी समर्थ नहीं है। मोहनीय कर्म अनन्त संसारीत्व का पालक और रक्षक है। मानव पर मोह का सजग पहरा है जिससे वह अनादि संसार के निज स्थान को छोड नहीं सकता। मोह एक है और जीव अनन्त है, तदपि अनंत होकर सभी मे प्रविष्ट होता है और अपना साम्राज्य चलाता है। मोह परम जागृत रहता है। वह क्षणमात्र का प्रमाद नहीं करता वह गिन २ कर सबकी सम्हाल लेता है। उस (मोह) की सत्ता समस्त विश्व मे व्यापक है।

जीव स्थावर से मनुष्य पद तक पहुँचता है इस बातका मोह को खेद मालूम होता है। इसी से मनुष्यों को धक्के मार २ कर पुनः जीवको स्वस्थान-स्थावर-मे ले जाने की मोह प्रेरणा करता है और अपना बल मानव के पतन के लिये खचंता है। मोह को चिंता है कि, शायद मानव मेरा विरोध करें। इसी से तो मानवों में विरोध की सम्यक् समझ आने के पहिले ही खान पान, मिठाई मेवा, स्त्री-पुत्र कुटुम्ब के बधन में बांध कर विषय कषाय में गुलतान बना कर सर्वथा आत्मभान भुलाता है।

मोह मानता है कि, अग्नि और अरि का प्रारंभ से ही नाश करना चाहिए । इस लिए मानव को ऊगती वय में ही मोह फंसाता है । क्योंकि, मोह भावना और धर्म भावना का अनादि वैर है । मोह के परिवार को धर्म भावना का नाश किए विना चैन नहीं होता । तमाम परिवार का स्वभाव एकसा है। मोही जीव महामोह के १८ पापस्थान रूप संतान का अपने महल में स्वागत करता है और १८ पापों की निवृत्ति रूप धर्म राज के सन्तानों से कहता है कि, जाइए, मैं आप को नहीं पहिचानता । ऐसी परिस्थिति मे मोह थोड़ी लालच देकर अनत काल मे हेरान हो ऐसे काम कराता है और अज्ञानी जीव प्रसन्नता पूर्वक पाप कार्य करता है ।

माछीमार चने की लालच से मच्छियों को फंसाता है, वैसे मोह माछीमार विषय भोगों की लालच से जीवों को नरकादिगति मे फंसाता है । मोह का काम जीवों के सद्गुणों का नाश करके दुर्गुणी बनाने का है । मोह नाटक का मेनेजर है और जीव नाचने वाला नट है । सूत्रधार की आज्ञानुसार वह विविध भेष धारण करता है । वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य आदि कर्म का स्वभाव तो अच्छा और बुरा दोनों तरह का है, परन्तु मोह का स्वभाव अति दुष्ट है उसका दूसरा प्रकार ही नहीं है । मोह बाजपक्षी की तरह जीव पर एकाएक हमला करता है अज्ञानी जीव मोह की आज्ञा मानते हैं । मोहनीय कर्म कमाता है, शेष सात कर्म बैठे बैठे खाते हैं । मोह महा शूरवीर है । क्षण भर में विश्व को चकाचौंध कर देता है ।

चक्रवर्ति और इन्द्रों को भी मोह से नचाये नाचना पड़ता है । राजा या देवता एक दूसरों का अपमान करते हैं, पर मोह का

अपमान कोई नहीं कर सकता। लोग अन्य कर्मों को दुश्मन रूप मानते हैं और मोह को मित्र रूप, यह आश्चर्य है ? त्यागी तपस्वी और वैरागी को भी मोह नचा सकता है। बहुरूपिया की तरह मोह विभिन्न रूप धारण करके विश्व को फसाता है। मोह विश्व का तंत्र चलाता है। मोह के अभाव मे विश्व का समस्त व्यवहार नष्ट होजाय। विश्व को चलाने का-निभाने का पोषण देने का कार्य मोह का ही है। मोह ने बलात् सब जीवो में अपना डेरा जमा रखा है। महामोह का शरीर अविद्या से बना है, जिससे यह दुःखों को सुख मनाता है। मोह का अनादर कोई विरल व्यक्ति ही कर सकता है।

मोह राजा की पटरानी "महा मूढता" है। सेनापति "मिथ्या दर्शन" है। महामोह ऐसा क्रोध उत्पन्न करता है जो ज्वाला मुखी को भी भुला देता है, मेरु को भी लघु दिखावे ऐसा महान् रूप उत्पन्न करता है, नागिन को भी भुलावे ऐसी माया उत्पन्न करता है, स्वयम्भूरमण समुद्र को बिन्दु मनावें ऐसा लोभ पैदा करता है।

मोहाधीन जीव इजा होने वाली भूमिका पर बसे हुए हैं। मोह मय प्रकृति के प्रभाव मे संसार विष के स्थानों को अमृत मय और दावानल के स्थानों को सुधामय समझता है। मोह के कारण जीव अपना जीवन अन्यों के संहारार्थ बिताते है और मोह के अभाव में अपना जीवन विश्व-सेवा के लिए बिताते हैं। मोहाधीनों का जीवन अनार्य जंगली या पशु-जीवन से बढकर नहीं होता। मोह के कारण मर्म छेदी जीवन बिताया जाता है। मोह की भाफ मे अन्य कइयों का भक्षण होजाता है और अन्त में काल के कवल होते है। मोहाधीन अन्यों को कुचल देता है और स्वयं काल द्वारा एक साथ कुचला जाता है।

पशु सृष्टि निर्बलों को दाबकर, कुचलकर अपना जीवन नि-भाती है, वैसे ही मोह की प्रधानता के कारण मानव सृष्टि भी पशु सृष्टि तुल्य अत्याचारी बनती है। विश्व की मारामारी-कुचला कुचली भीषण प्रचण्ड क्लेश मय जीवन और कलह-मोहमय जीवन से ही उत्पन्न होती है। मोह के वेग की वासना में मानव अपने आपको फाड़ खाता है। जीवों को मोहमय जीवन और विषय-वर्धक वार्तालाप के अलावा कुछ भी पसन्द नहीं आता।

कबूतर और चूहे में भी इतनी सामान्य समझ है कि, वे अपने घातक बिल्ली और कुत्ते से दोस्ती नहीं रखते। इतनी समझ भी जिसमे हो ऐसे समझदार मोह के संयोगों से सदा सावधान रहें। मदिरा सबल और निर्बल पर असर करता है, परंतु मोह मदिरा निर्बलों पर ही असर कर सकता है। अग्नि का तिनका लाखों मन रूई को जला सकता है, वैसे मोह जन्य राग द्वेषाग्नि अनन्त जन्मों की पुन्याई का नाश करता है। मोह की मदोन्मत्त दशा में प्रभु पथ को पाप पथ और वीतराग वाणी को वैरी वचन मानते हैं। मोक्षार्थी जीवों को दया पात्र मानकर अपने (मोह मय) जीवन को सुभागी मानते हैं। मोह की इतनी भयंकरता होने पर भी अ-नादि परिचय के कारण वह भयकरता भूली जाती है और विपरीत दिशा में बहाव होता है। आत्मा अनन्त बल की धारक है। स्वयं जैसा बनना चाहे बन सकता है, मोह की सत्ता का नाश कर सकता है। सूर्योदय होने पर अनन्त अन्धकार क्षण मात्र मे नाश हो जाता है वैसे ज्ञानोदय होने पर अनन्त काल की मोह की सत्ता नष्ट हो जाती है। बिल्ली को देखकर चूहे भग जाते हैं, वैसे ही ज्ञान के आने पर मोहमय चूहियां भग जाती हैं और आत्मा निजानन्द का अनुभव करता है।

११–योग ।

योग शब्द का अर्थ जुड़ना या मिलना होता है। आत्मा, मन वाणी और देह के साथ मिलकर बहिर भाव को प्राप्त होता है, उस व्यापार को योग कहते हैं। आत्मा मे कर्म-ग्रहण की शक्ति होने की स्थिति विशेष को भाव-योग कहते हैं। भाव योग के निमित्त से आत्म प्रदेश मे परिस्पन्दन (चांचल्य) उत्पन्न होने को द्रव्य योग कहा जाता है।

कर्मों का आत्मा के साथ बन्ध होने में योग और कषाय निमित्त रूप हैं। विना कषाय का योग कर्म बन्ध का हेतु हो सकता है, परन्तु जहां कषाय हो वहां योग की अनिवार्यता होती है। संसारी दशा में योग छूट नहीं सकता। पर आत्मा चाहे तो कषाय को छोड़ सकती है।

कषाय से स्थिति और अनुभाग बन्ध होता हैं और योग से शेखचिल्ली जैसे विषय कषाय वर्धक विचार पैदा करता है। महामोह की निद्रा मे विवेक रूप चक्षु बन्द हो जाते हैं। निद्रा में मानवी जीवन के सब प्रसंग भूले जाते हैं, वैसे मोह निद्रा मे भी पुण्य पाप, स्वर्ग नर्क बंध और मोक्ष के विचार भी भूले जाते हैं।

स्त्री, पुत्र और धन का मोह नहीं होता तो मनुष्य मोक्ष दीपक का पतंग बनकर अप्रमत्त भाव से उस दिशा में प्रयत्न करता। मोह को अविद्यामय अतिजीर्ण शरीर है तथापि वह बालक जैसा ताजी स्फूर्ति वाला है। अनन्त काल का जीर्ण होने पर भी वृद्ध नहीं है। नित्य नयी बाल्यावस्था जैसा प्रतीत होता है। मोह अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र दुःखद को सुखद अनात्म को आत्मरूप, यों विपरीत रूप अनुभव कराता है। मोह के अनादि जीर्ण देह मे जवानी का जोश है।

दूसरे पाप काले मालूम होते हैं, जब कि मोह के हास्यादिपाप सफेद मालूम होते हैं; जिससे उसके पाश मे सज्जन भी फँसते हैं। मोह मीठा जहर है। जिससे उस विष को अमृत मानकर जीव शौक़ से पीता है।

मोह के सोलह विचित्र प्रकार के तोफानी लड़के हैं, उन सोलह बालकों को अज्ञानियों ने मुँह लगाकर लाडले बनाये हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, इनके चार २ भेद हैं, यों सोलह बालक कहे है। क्रोध, मान का द्वेष मे और माया लोभ का राग मे अन्तर-भाव होता है।

यदि मोक्ष की गाडी का किराया दो रुपया लगता हो तो मोहाधीन जीव स्त्री पुत्र और धन के मोह से सवा रुपया ठहराने की कोशिश करेगा। जीवों को धनादि का मोह मोक्ष से भी अधिक मूल्यवान मालूम होता है। दान, शील, तप और भावना आदि मोक्ष मे लेजाने वाली गाड़ियाँ हैं तथापि मोहाधीन जीवों को उसमे वैठना क्यों नहीं सुहाता !

मनुष्य की कमर टूट जाय तो सब अंग नीचे झुक जाते है, वैसे ज्ञान के दंड से मोह कर्म की कमर तोड दी जाय तो सब कर्मों का नीचे ढेर हो जाय। मोह की सत्ता से जीव अपने आपको पीस कर चूर्ण बनाता है, बिलकुल निर्माल्य बन जाता है, जिससे उसको आत्म भान नहीं रहता है। मकड़ी अपनी बनाई हुई जाल में फँस कर मृत्यु पाती है, वैसे जीव अपने मोह जाल में फंसकर मरता है। मोह मे मनुष्य अपने आपको मृत्यु मे भी अधिक निर्माल्य बनाता है। मोह के बनाये हुए Bomb से वह स्वयं चूर हो जाता है। मोह अग्नि मे जलकर वह स्वयं राख का ढेर होजाता है। मोह

के प्रताप से जीव वासना द्वारा विका हुआ है। मोहमय जीवन श्राप समान है। मोह द्वारा अज्ञानी जीव घास की तरह विषय कषाय अग्नि में होमे जाते हैं।

प्रकृति और प्रदेश बंध, कषाय योगरूप श्वेत वस्त्र पर का रंग है। विना रंग का वस्त्र हो सकता है वैसे कषाय विना भी योग प्रवृत्ति हो सकती है। अपने सब प्रकार के योगों से कषायों का मुक्त रख कर उसे उच्च, प्रशस्त आत्माभिमुख रखना धार्मिकता का मुख्य लक्षण है। अपनी मनोवृत्ति वाणी और शरीर चेष्टा मे जितना कषाय का अंश हो उसे ढूंढ कर वहिष्कार करने में आन्तरिक जीवन की सार्थकता है। जहां सिर्फ शारीरिक जीवन विताने का हो और आध्यात्मिक जीवन की गंध भी न हो वहां कषाय का तारतम्य सम्पूर्ण होता है।

मनुष्य में से बुद्धि, विचार, विवेक सारासार के निर्णय की शक्ति घटाने में आवे तो वह पशु तुल्य है। जहां तक आत्माभिमुख नहीं होता वहां तक उसकी बुद्धि, विचार आदि शक्तियो उसे पशु बनने में साथ देती हैं और पशु बुद्धि के अभाव मे वृत्तियां का मर्यादा मे उपयोग करता है, उन वृत्तियों को मनुष्य अपनी बुद्धि, शक्ति से बहका कर विषय कषाय के तत्वों को अति भयानक बनाता है। मनुष्य को जो बुद्धि प्राप्त है वह विषय-कषाय को उत्तेजित करने के लिये नहीं किंतु आत्माभिमुख होकर विषय-कषाय को नाश करने के लिए मिली है। विना आत्माभिमुख हुए मानव पद पद पर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है।

अज्ञानवशात् आत्मा को कषाय का नाद मधुर लगता है। उसे उस रंग की चमक पर अति प्रेम है जिससे वह उसे सहज नहीं

छोड़ सकता। जब मनुष्य स्वेच्छा पूर्वक विषय-कषाय का त्याग नहीं करता तो बलात्कार से प्रकृति छीनकर उस पर उपकार करती है। दुःख के प्रहारों से भी कुदरत विषय-कषायों को छीनकर जीव की घोर पतन से रक्षा करती है।

कर्म की गति अथवा विधि का विधान ही ऐसा है कि वह मनुष्य को परमात्म-स्वरूप में बदलना चाहती है। प्रकृति अनेक रीत्या मानव को शुभ सन्देश देती है। सदुपदेश नहीं माने तो दुःख देकर भी उसकी आंखें खोलती है। फिर भी मनुष्य न माने तो जहां विशेष सुख को स्थान न हो ऐसी जगह उसे भेजती है।

मन, वचन और शरीर की सर्व क्रियाओं को पवित्र, उज्ज्वल और आत्म-विकास के मार्ग के अनुकूल बनाने में अपना पुरुपार्थ है। मन का पवित्र, निर्मल, निष्पाप अवस्था में आत्मा का प्रतिबिम्ब स्वच्छ और यथार्थ पड़ता है। शरीर का उपयोग आत्मोन्नति के लिए ही करना चाहिए। जो मन, वचन और शरीर आत्मा को बन्धन रूप हो तो उनकी प्राप्ति निरर्थक और अकल्याणकारक है वर्तमान के राक्षसी यन्त्रवाद युग में मानवों के मन, वाणी और शरीर के योग ऐसे भयंकर, राक्षसी और जड़ बने है कि वर्तमान जगत की सर्व सम्पत्ति, वैभव विलास और सुख के साधन नारकी के जीवों को दिया जाय तो वह लेने के लिये तैयार नहीं होवे। क्यों कि वर्तमान के विषय-विलास और शृंगार के सुख नरक के दुखों से अनन्त दुखों के भण्डार रूप हैं। वर्तमान के राक्षसी यन्त्रवाद के और विज्ञान के विलासी साधनों को विनाश के साधन मानते है और नारकीय दुखों को अपना विकास धाम तीर्थयात्रा मानते हैं। नारक जीव प्रति समय दुःख मुक्त हो रहे है। जब वर्तमान का वैज्ञानिक युग का विलासी जीव अपने मन वचन और

शरीर के योग से हर समय नरक के अनन्त दुःख के निकट जारहा है। उत्तम योगों की प्राप्ति उत्तमता के लिए मिली है, उसके दुरुपयोग से दुश्मन को भी दया उपजे ऐसे दुःखद संयोग पैदा होते हैं। अतः योगों को अप्रमत्त भाव में प्रवर्ताना ही जीवन के योगों का साफल्य है।

१२–मन वचन काया।

मन—

चन्द्र सूर्य में से प्रकाश, पुष्प में से सुगन्ध और अग्नि में से उष्णता झरती है। इसी प्रकार मनो द्रव्य में से नित्य प्रभा झरती है। उसको अपनी शास्त्रीय भाषा में लेश्या कहते हैं। मन के परमाणुओं का असर हजारों वर्षों तक कायम रहता है। पवित्र पुरुषों के धर्म मय मन के परमाणुओं से धर्म स्थान पवित्र मानने में आता है। कारण कि वहाँ ऐसे परमाणु हैं। अतः मन के विचारों को सदा पवित्र रखो। वायरलेस द्वारा मन के परमाणु हजारों कोसों तक जा सकते हैं फिर मन के परमाणु तो उससे विशेष सूक्ष्म एवं शीघ्र जाने वाले हैं। किसी के लिए अच्छे या बुरे विचार करने में आते हैं तो उनका असर चाहे जितनी दूर हो, हो जाती है।

मन आलमारी तुल्य है, उसमें विविध खाने (विभाग) हैं। हर एक में विविध विषय-वस्तुएं भरी हैं। जैसे विषय भरे हैं वैसे ही निकलते। मैली वस्तुओं को स्पर्श मात्र नहीं किया जाता तो मैले विचार मन में कैसे रखले जाये " या भरे जाय "

पवित्र विचार वाले मानव जंगम तीर्थ स्थान हैं। वे जहाँ पैर रखते हैं, वहाँ शक्ति, प्रेम, त्याग, क्षमा, दया का वातावरण फैलता है, और अपवित्र विचार वालों के पदार्पण हो, वहाँ अशान्ति फैलती है।

वचन—

दूसरा व्रत (सत्य), दूसरी समिति (भाषा) और दूसरी गुप्ति (वचन) की मर्यादानुसार भाषा पर संयम रखने का प्रभु का फरमान है। लिखने में काना, मात्र, बिंदी, पद, ह्रस्व, दीर्घादि की सावधानी रक्खी जाती है, वैसे वचन बोलने मे भी निरर्थक शब्द या काना-मात्रादि का उच्चारण न होने का ध्यान रखना आवश्यक है। वचन प्रयोग चिंतामणी से भी अधिक मूल्यवान् है। धन की थैलियों से भी वचन की कीमत अधिक है। हृदय नापने के लिए वचन थर्मामीटर है। अतः बिना विचार के बोलना जोखम कारक है। अल्प भाषी को अल्प और बहुभाषी को बहुत पश्चाताप करना पडता है। प्रभु महावीर ने भी १२॥ वर्ष तक मौन रखा था।

बिना गोली के बन्दूक की आवाज निशाना को नहीं तोड़ता, वैसे ही बिना वर्तन के वचन तथा उपदेश का असर नहीं होता। अतः ऐसे वचन बोलो, लिखो, विचारो-चिन्तवो कि, दुश्मन भी अपना वर भूल जाय। अत्यधिक बोलने से शरीर मे अनेक प्रकार के रोग भी उत्पन्न होते है, अतः यथा शक्ति कम बोलना-वचन का संयम रखना आवश्यक है।

काया—

गन्दी हड्डियाँ मांस, लोहू चर्म के पिंड रूप काया है। धर्माराधना ही इसकी विशेषता-अच्छादन है। शरीर में से निकलता

श्वासोश्वास फेंकता है। वनस्पति का श्वासोश्वास मनुष्यों के लिए अमृत तुल्य है। शरीर मे ऐसे २ पदार्थ भरे हैं कि, जिस को बाहर निकाल कर देखे जाय तो नफरत आवे। कै हो उस रास्ते से चलने का दिल नहीं होता। ऐसे देह मे अज्ञानी मोहित होते हैं। देह इतना अशुचिमय है कि, किंचित् असावधानी रक्खी जाय तो कीड़े पड जाय। धर्माराधना की विशेषता न हो तो उदारिक शरीर मिट्टी के ठीकरे से भी निकम्मा है।

हाड, मास, लोहू, वात, पित्त, कफ, मलमूत्र, कृमि और नसा जाल पर से चर्म का ढक्कन हटा लिया जाय तो महा भयंकर और कौए कुत्ते को खाने योग्य देह दिखे। काया मलमूत्र, लोहू-पीप की बहती गटर है। अशुचि पदार्थ बहते रहे, वहां तक शरीर की कीमत है। गटरें बहती बंद हुई कि, काया मुर्दा समझी जाकर श्मशान योग्य होती है।

खेत मे उकरडा-मैला खात डाल ने से सुन्दर फूल फलादि उत्पन्न किए जाते है और शरीर रूप खेत मे मेवा, मिष्टान्नादि डालकर मलमूत्र उत्पन्न किया जाता है। जिस मकान में सिंह, सर्प आदि रहते हो, उस मकान मे कौन रहना पसन्द करे ? कोई नहीं। शरीर रूप घर में सिंह सर्पादि से अत्यधिक भयंकर सवा पांच क्रोड रोग वसते हैं। ऐसे शरीर पर कौन ममत्व रक्खे? रत्नत्रय का आराधन देह द्वारा किया जाय तो साफल्य है, वरना निरर्थक है।

१३ विषय-कषाय।

आत्मा मे विषय वासना की सड़क बनी है। उस पर विषय कषाय के घोडे पूर्ण वेग से दौडते हैं। फोनोग्रॉफ की रेकार्ड की तरह आत्मा में विषय विकार के विचार भरे हैं, जिससे संयोग मिलते ही वैसी आवाज होती है। ज्ञान के विचार भरे जाय तो वैसी आवाज निकले। रेकार्ड भरने वाला स्वयं ही है।

संसारी जीवों के मगजरूप तंबुरे में विषय कषाय के तार जमे हैं, जिसके बिना बजाये भी पवन की लहरों से वैसी ही आवाज निकलती है। मगज के तम्बूरे मे से विषय कपाय के तार बंदल कर ज्ञान क्रिया के तार बैठाये जाय तो वैसी आवाज निकलेगी?

गणित की संख्या क्रोडों अङ्कों की है, किन्तु एक भी संख्या या अक लिखना नहीं आता, उसे अक ज्ञान निष्फल है। वैसे ही विषय कषाय की एकाध वासना का विजय बाकी हो तो सर्वस्व का नाश होता है।

चार पाये और चार ईसों में से एक भी कमी हो, वहां तक पलग नही बनता वैसे, आत्मा मे विषय कषाय की लेश भी मात्रा हो, वहां तक आत्म आराधना नहीं हो सकती। मैले कपडे पर रंग नहीं चढ सकता, वैसे विषय वासना का नाश हुये बिना आत्म ज्ञान का रंग चढ़ नहीं सकता।

विषय -वासना देह है तो कषाय उसकी छाया है। "जहां या, वहा छाया" के न्याय मे "जहां विषयों का वास, वहां यों का वास है"।

१३ विषय-कषाय।

आत्मा मे विषय वासना की सडक बनी है। उस पर विषय कषाय के घोडे पूर्ण वेग से दौड़ते हैं। फोनोग्रॉफ की रेकार्ड की तरह आत्मा में विषय विकार के विचार भरे हैं, जिससे सयोग मिलते ही वैसी आवाज होती है। ज्ञान के विचार भरे जाय तो वैसी आवाज निकले। रेकार्ड भरने वाला स्वयं ही है।

संसारी जीवों के मगजरूप तंबुरे में विपय कषाय के तार जमे है, जिसके विना बजाये भी पवन की लहरों से वैसी ही आवाज़ निकलती है। मगज के तम्बूरे मे से विपय कषाय के तार बदल कर ज्ञान क्रिया के तार बैठाये जाय तो वैसी आवाज निकलेगी ?

गणित की संख्या क्रोड़ों अङ्कों की है, किन्तु एक भी संख्या या अक लिखना नहीं आता, उसे अक ज्ञान निष्फल है। वैसे ही विपय कपाय की एकाध वासना का विजय बाकी हो तो सर्वस्व का नाश होता है।

चार पाये और चार ईसों मे से एक भी कमी हो, वहां तक पलग नही बनता वैसे, आत्मा मे विपय कपाय की लेश भी मात्रा हो, वहा तक आत्म आराधना नहीं हो सकती। मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ सकता, वैसे विपय वासना का नाश हुये विना आत्म ज्ञान का रंग चढ़ नहीं सकता।

विपय -वासना देह है तो कपाय उसकी छाया है। "जहां काया, वहा छाया" के न्याय से "जहां विपयों का वास, वहा कपायों का वास है"।

पिंजरे में फंसे हुए पक्षी को पराधीन हो मांसाहारी की हंडी में उबलना पड़ता है, तो स्वेच्छा-पूर्वक विषय कषाय के पिंजरे में फंसने वालों की क्या गति होगी ? कूए में गिरने वाला कभी बच भी सकता है, परंतु विषय कषाय कूप पाताली कूआ है, उसमें गिरने वाला कभी बच नहीं सकता। विषय कषाय का प्रेम काले नाग को गोद में बठाकर दूध पिलाने तुल्य है। विषय कषाय के शरण से मरण का शरण अधिक श्रेयस्कर है।

परलोक का अविश्वासु-नास्तिक विषय-कषाय का शरण लेते हैं। विषय कषाय से विशेष गुनहगार विश्व में कोई नहीं है। विषय कषाय मय जीवन बिताना कब्र के मुर्दे की तरह विश्व में दुर्गंध फैलाने समान है। विषय कषाय के दुःखद कैदखाने के कैदी न बनो। विषय वासना का नाश किये बिना धर्म भावना रखना, ४८ दुर्गंधयुक्त सड़े बर्तन में पानी भरने समान है।

विषय कषाय युक्त मानव संसार पशु-संसार को भी लज्जित करता है। विषय-कषाय के नाश किए बिना की क्रियाएँ रेतके रस्से बटने समान है। जो पशुयोनि के निकट है वही विषय में रक्त रहता है। आश्चर्य है कि, मनुष्य के गुलाम होने में लज्जा मानने वाले विषय-कषाय के गुलाम होने से क्यों लज्जित नहीं होते! विगाड करने वाले नौकर या जानवर से भी प्रेम नहीं किया जाता, तो अनन्त काल से दुःख दावानल में रखने वाले विषय कषाय रूप विषैले तत्वों से क्यों प्रेम किया जाता है?

इन्द्रियजन्य सुख पशु हुए बिना भोगे नहीं जाते। गडुरिये के कीचड़ से विषय कषाय का कीचड अनन्त मलीन है। मैले को घर में रखने में रोग फैलता है और खेत में फेंक देने से मधुर फल देने में साधक बनता है, वैसे विषय कषाय को आत्म मंदिर में रखने से आत्मा का पतन होता है और बाहर फेंकने से स्व-पर का श्रेय होता है। विषय-कषाय के संग से सर्प और अजगर का संग अल्प हानिप्रद है। विषय कषाय को फांसी पर लटकाओ, अन्यथा वे तुम्हें फांसी पर लटकावेगा। विषय कषाय के स्वामी मिट कर सेवक मत बनो। विषय-कषाय चंडालों को कहो कि, तुम्हारा स्पर्श मात्र हम नहीं करेंगे। अज्ञानी यन्त्रवत् है उन्हीं को विषय-कषाय नाच नचा सकते है।

वीतरागता के आसन पर विषय-कषाय विराजमान होने से अपना अपमान समझकर वीतरागता लौट जाती है। शरीर से भी विषय कषाय का बंधन विशेष है। शरीर तो अनन्तवार छूट गया, परंतु विषय कषाय आज तक एक बार भी नहीं छूटा है। आत्मा की पवित्रता विषय कषाय के पर्दे पीछे छीप गई है। अपने शरीर पर अग्नि का तिनका नहीं रखा जाता तो विषय कषाय की भाव अग्नि में क्यों झुकाया जाता है?

विषय कषाय की मन्दता से आत्म प्रकाश बढ़ता है। शरीर के लिए अच्छे से अच्छा खुराक दिया जाता है, तो आत्मा को शत्रु भी न दवे ऐसा बुरे से बुरा विषय कषाय का खुराक क्यों दिया जाता है? शरीर की तरह आत्मा पर भी दयालु बन कर दया करें। विषय कषाय वृत्ति पिशाच वृत्ति है। पैर नीचे जलती विषय कषाय की लंका बुझा दो।

निर्बल पशु को अधिक मक्खियां सताती हैं, वैसे निर्बल आत्मा को विषय कषाय की वृत्तियां अधिक सताती हैं। विषय कषाय की कालिमा युक्त हृदय को श्वेत बनाये बिना श्वेत वस्त्र धारण करना मायाचार है। विषय कषाय का त्याग न हो सके तो सत्य के खातिर काले वस्त्र पहिन कर पाप से बचें। जंगली बाघ शेर में भी विषय-कषाय की क्रूरता अत्यधिक है।

अनन्त जन्म मरण का उपादान विषय कषाय है। उनके त्याग से निर्वाण की प्राप्ति होती है। लोह का जंग लोह को खाता है, वैसे विषय कषाय का जंग नित्य विषयी का नाश करता है।

विषय-कषाय-वृत्ति सज्जनों के जीवन का कलंक है।

दिखने में और अज्ञानियों के अनुभव मे चाहे कैसे ही मिश्रीत दिखे, परन्तु है तो हलाहल विष ही। अतः विपय कपाय की वृत्तियों को वितराग वृत्तिमे बदल देना चाहिए।

भूत लगे हुए को भूत का अनुभव हो तो भूत भग जाता है, वैसे ही विपय कपायी को विपय का भूत मालुम पडे तो वह भी भग जाता है। अज्ञानियों को विपय-कपाय रूप वाघ फाड खाता है। अज्ञान जीव रूप मच्छ विपय कपाय की जाल मे फँसते है।

शरीर रूप सुवर्ण के टोकरे मे विपय कपाय रूप विष्टा भरते शर्माना चाहिए। आरोग्य विगाड ने वाली वात पित्त कफ़ की तीन नालिया शरीर मे है. वैसे आत्मिक आरोग्य विगाड ने वाले हिंसा, विपय और कपाय हैं।

एक वक्त का विपय का विजय शाश्वत विजय है। विपय कपाय का विप विंदु ज्ञान सिंधु को विपमय बनाता है। विपय कपाय को हिलाने वाला विश्व को हिला सकता है। विपय कपाय आत्म गुणों की उकरड़ी बनाकर संसार वृक्ष को खात रूप से पोपते हैं। विपय कपाय विना अज्ञानो को चैन नहीं पड़ता। उसके वियोग मे आत्मघात के लिए तैयार होता है। विपय कषायादि दुष्ट मित्र जीवो का पतन करके उसकी वधाई परमाधामी को भेजते है। विपय कपायी दुष्ट मित्र गुप्त रूप से शरीर मे रह कर प्रेरणा करते हैं। और अपनी वासना पूर्ण न हो वहां तक आराम लेने नहीं देते।

गत अनन्त भावों मे विपय कपाय का विजय करके मानव भव प्राप्त किया, इसका वैर लेने इस भव मे जीव के पतन के लिए वे यत्न करते है। वार २ धक्के लगाकर मूलस्थान स्थावर जीवयोनि

मे घसीट जाते हैं। जीवों को स्थावर योनि मे रख कर मोहराज का परिवार (विषय-कषाय) असख्य या अनन्त काल के लिए निश्चिन्त होता है।

वर्तमान मैं विषय कषाय की भावना गीली मिट्टी की तरह नाखून से खोल सकते है। उसमे प्रमाद किया जायगा तो वह जम कर मेरु समान वज्र मय बनेगा, जिसको इन्द्र के वज्र से भी नहीं खोला जा सकेगा। वर्तमान मे विषय कषाय वट के बीज जैसा है वह बढ़ कर विशाल वड बन जायगा। विषय कषाय रूप चोर आत्मा के गुणों को चुराते हैं। विषय कषाय रूप दावानल आत्म जङ्गलों का नाश करता है।

संसार कसाई खाने मे विषय कषाय रूप कसाई है। मानव रूप पशु हैं, स्त्री पुत्र धन रूप विविध बंधनों द्वारा ममत्व रूप गले मे बंध कर कट रहे है, छेदन भेदन हो रहे है।

मनुष्य भव मे विषय कषाय का सेवन करना सोने के थाल में विषमय विष्टा जीमने जैसा है। विष भक्षण, अग्नि प्रवेश, पर्वत पतन, सर्प संग आदि से भी विषय कषाव का संसर्ग अनन्त दुःखदायी है।

कैदी अपने पास चाकू, छुरी या सुई भी नही रख सकता, न सरकार भी रखने देती है, तो विषय रूप विषैले शस्त्र रखने मे कितना जोखम है और रखने वाले को कितना नुक्सान होगा? देह रूप गुफा में विषय कषाय रहते हैं और स्वच्छंदता से बाहर निकल कर अपना स्वभाव प्रदर्शित करते है। विष न वेचा जाता, न खाया जाता, न पास रखा जाता, न किसी को दिया जाता, तो उस से अत्यधिक भयंकर विष, विषय-कषाय का सत्कार कैसे हो सके? आश्चर्य है कि आयुष्य घटता है पर विषय-कषाय की मात्रा बढ़ती है। विषय-कषाय पिशाच है, इसका संग करने वाला भी पिशाच बनता है। विष की भस्म मात्रा (औषध) रूप अमृत का काम करती है, वैसे ही विषय-कषाय की भस्म आत्मा के लिए मात्रा सम परम सुखदायी होती है। व्यवहार से दारू मांस अभक्ष्य है और भावसे विषय-कषाय अभक्ष्य है। आर्य को मांसाहार का स्वप्न भी नहीं आता वैसे विषय-कषाय का स्वप्न भी नहीं आना चाहिए।

विषय-कषायी के जीवन सातवीं नरक के त्रसित नैरिये से भी अधिक दया पात्र है। अतः विषय-कषायों मे आत्म-गुणों की होली न करें। कोई शस्त्र से अपने अंगोपांग नहीं काटता, फिर विषय-कषाय रूप शस्त्रों से अनन्त काल के लिए अपने अंगोपांग क्यों काटे जायें? विषय-कषाय नरक-निगोद मे खिंचने वाली रस्सियां है। विविध-प्रकार की फांसियां हैं।

१४–कषाय।

पशुओं मे कषाय-वृत्ति स्वभाविक है। साधन भी वैसे ही हैं। वृक्षो मे कांटे, अग्नि में उष्णता, गाय, भैसों को सींग, पक्षियों को तीक्ष्ण चाच, विच्छू को डक, सांप मे विष, सिंघ, वाघ, रीछ आदि निशाचरों को नाखून, दाँत और दाढ तथा उनकी भयंकर शारीरिक आकृति, सांप मे क्रोध, सिंह, वाघ आदि मे क्रूरता, लोमडी मे लुच्चाई, कुत्ते मे ईर्षा, मोर मे मान, पशुओ मे माया प्रतीत होते हैं, वैसी वृत्ति उनमें होना आवश्यक है। जो कुत्ते में द्वेष और ईर्षा नहीं होती तो उसके पास का कुत्ता या अन्य पशु उसे रोटी के टुकडे न खाने देते और उसे भूखे मरना पडे। गाय, भैसों को सींग न हो तो वे अन्य पशुओं से अपनी रक्षा कैसे कर सके? सांप के काटने का भय न हो तो उसको हरकोई सतावे। पशु-संसार की आकृति मे और स्वभाव मे ही कषाय प्रतीत होता है, परन्तु मनुष्य अनन्त पुण्यशील होने से जन्म के साथ ही सुख के साधन यथा पुण्य लाता है, तथा जन्मते ही उसके रक्षक माता पिता होते है। जब कि पशुओ के पास अपनी रक्षा के लिये कषाय या सींग आदि के अलावा अन्य साधन नहीं होता। मनुष्य चाहे जैसे क्रोधी को भी अपनी मीठी वाणी द्वारा शांत कर सकता है, समझा सकता है। मनुष्य की आकृति मे, शांति, क्षमा, धैर्य, गंभीरता आदि गुण प्रकाशमान् है। पशु जैसी क्रूरता और भयंकरता मनुष्य के चेहरे पर न होना चाहिए। मानव-देह पर पशु जैसे सींग शोभा नहीं देते। वैसे ही पशुसी कषायवृत्ति भी नहीं शोभा देती। कषाय करने वाला, मनुष्य मिटकर पशु होता है। कषाय करने वाले मनुष्य पर पशु जैसे सींग चाहिये, जिससे वह कषाय करने योग्य माना जा सके।

मनुष्य को अपने पूर्व-पशु-जीवन की कषाय-प्रकृति याद आती है, जिससे कषाय-प्रवृत्ति से पशुता प्रकट करता है, और मानव प्रकृति से विरुद्ध-पशु प्रकृति -के अनुकूल कषाय का आविष्कार करता है। क्रोध के लिए मनुष्य के पास सींग, नाखून जहरीले दांत, दाढ डक या विष न होने से मनुष्य विष-मय पदार्थ, विष-मय शब्द तथा तलवार, भाला, बर्छी, तोप, बन्दूक, मशीन-गन और गैस आदि बनाकर क्रोध वृद्धि के साधन बनाते जाते हैं।

मान-कषाय पोषने के लिए यह धनवान, यह निर्धन, यह मूर्ख, यह चतुर आदि शब्द जाल रच कर तथा मान-पोषक साधन, गाडी घोडा मोटर हवाईजहाज, बाग-बगीचे. बगले हवेलिया और विविध प्रकार के वस्त्र, पात्र और आभूषणो का आविष्कार किया है और नित्य नये साधन बढाते जा रहे हैं।

माया—अपने अपराध छिपाने के लिये वकील, बैरिस्टर, जज कचहरी आदि का शरण लिया जाता है और सत्य को असत्य और असत्य को सत्य बनाने वाले वकील बैरिस्टरों की सख्या बढ रही है।

लोभ को बढ़ाने के लिए अनेक पाप-मय धन्धे, व्यौपार, नौकरी दलाली, शराफी, बैंक बीमा कम्पनी आदि साधन बढ रहे है। उक्त रीत्या कषायों को पुष्टकर मनुष्य अर्धपशु बनता है और मृत्यु के बाद पूर्ण पशु बनता है।

कषाय के पाप मे से वीतरागी मुनि का भेष धारण करने वाले भी नहीं बच पाये।

त्यागी—वर्ग ने भी अपनी कषाय-वृत्ति को पुष्ट करने के लिए अपने भेष में शोभे ऐसी विविध शोध की है। कषायों के त्याग से पशु मे से मानव क्रमशः समदृष्टि, श्रावक और साधु होते हैं। जहां तक कषाय है, वहां तक मनुष्यत्व समदृष्टि श्रावक और साधु पद के लिए कलक है। इसी लिए शास्त्रकारों ने कषाय नहीं करने का बार बार आदेश दिया है।

१५–चार कषाय रूप सर्प।

क्रोध रूप सर्प की आंखे मध्यान्ह के सूर्य जैसी लाल होती है। जीभ बिजली के चमकार जैसी चंचल होती है, भयकर विष से भरी दाढे होती है, उल्कापात के अग्नि जैसी भयकर प्रकृति होती है। जिसको क्रोध-सर्प काटता है वह कार्य अकार्य, हिता हित का विचार नहीं कर सकता है।

मान रूपी सर्प मेरु शिखर से भी मोटा है। उसे आठ मद रूपी आठ फण है। जिसको मान रूपी सर्प काटता है वह बडे ज्ञानी की भी शर्म नहीं रखता, महात्माओं के वचनों का भी अनादर करता है।

माया-नागिन दिखने मे वडी सुन्दर है। वह आत्मा की तह मे पहुँचकर अपना विष फैलाती है। इस सर्पिणी ने वडे२ सर्पों से भी अधिक विप सचय कर रक्खा है। उसका विप सविशेप भयकर है। यह नागिन गुप्तरूप से आक्रमण करके अपना विप फैलाती है।

लोभ-सर्प जिसको काटता है, उसका पेट विप के कारण फूल कर समुद्र जितना वडा वन जाता है। उसमे चाहे कितनी ही चीजें भरो, पेट नहीं भरता। सव दुःखों का राजमार्ग यही सर्प है। वह नित्य अपना शरीर वढ़ाता जाता है।

चार कपाय रूप चार सर्प समस्त विश्व को सदा तप्त गर्मा-गर्म रखते है। ये चार सर्प जिसे काटते है उसे कोई वचाने मे समर्थ नहीं है। शान्त दयालु पुरुप चार सर्पों के साथ रमत रमना पसन्द नहीं करते। परन्तु अज्ञानियों को इन सर्पों से खेलने का शौक होता है। फलतः ये सर्प अज्ञानियों का भक्षण करते है। चार सर्पों को पकड़कर ज्ञान के करडिये मे डाल दिये जाय तो वे बाहर निकलने न पावें और कड़ी दृष्टि रखने से रक्षा हो सकती है। तभी शाश्वत अनन्त सुख प्राप्त हो सकता है।

१६–क्रोध–क्षमा।

क्रोध करके बालक को भयभीत करने से बालक की मृत्यु भी हो सकती है, ऐसा डॉक्टर एवं विज्ञानियों का मत है। क्रोध करने वाले के थूँक को चांटने वाला भी मृत्यु को प्राप्त कर सकता है, ऐसी अमेरिकन डॉक्टरों की मान्यता है। क्रोधी को वाई तथा हिष्ट्रिया का रोग भी लग जाता है।

जीवन में एक बार विष खाने वाला या अग्नि में गिरने वाला मृत्यु को प्राप्त करे तो नित्य ही अनेक बार क्रोध रूप विष का भक्षण करने वाला तथा क्रोध रूप अग्नि मे पड़ने वाले की कितनी दुर्गति हो सकती है!

चाहे जैसे संयोगों में भी अग्नि मे गिरना कोई पसन्द नहीं करता, उसी प्रकार चाहे जैसे संयोगों में भी क्रोध रूपी अग्नि मे नहीं गिरना चाहिए।

अग्नि में पड़ने से शरीर की हानि होती है। किन्तु क्रोध से तो आत्मा को अनन्त गुणी हानि होती है। कारण कि, द्रव्य अग्नि से क्रोध की भाव अग्नि अनन्तगुणी भयकर है।

क्षमा मय मरण उत्तम है, किन्तु क्रोध मय सागरोपम का स्वर्ग जीवन भी नारकीय जीवन से अधम है। क्रोधी को उत्तर देना वह अग्नि मे घी होमने के समान है। जब छाछ तथा दूध का एक भी बून्द व्यर्थ नहीं फैंका जाता तो मोती से भी महँगे वचन क्रोधाग्नि मे किस लिए होमे जायँ?

क्रोध करना यह विषैली वृत्ति है। यहवृत्ति अपने गर्व को तृप्त करने का साधन है। क्रोध मे नामर्दी है। क्षमा मे पुरुषार्थ है! क्रोध वाचाल का शस्त्र है। क्षमा वीर का शस्त्र है। क्षमा की प्रेम ज्वाला के समक्ष कठोर से कठोर पत्थर-दिल भी पिघल जाता है।

क्रोधी के सामने क्रोध मय उत्तर देना दुर्बलता और हिंसक वृत्ति है। किसी मे अधिक क्रोध देखकर घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि जिसमे जितना अधिक क्रोध है वह उतना ही अधिक क्षमा रखने का विशेष अवसर देता है।

क्रोधी का क्रोध या उसके अन्य दुर्गुण उसको क्रोधमय हित-शिक्षा देने से दूर नहीं होते, किन्तु उससे क्षमा, विनय एवं सज्जनता पूर्ण व्यवहार रखकर तुम उसे सुधार सकते हो। विशेष क्रोधी का तुम्हे विशेष उपकार मानना चाहिए। क्योंकि वह क्षमा के लिए अधिक अवसर देता है। वह तुम्हारा परीक्षक है, तुम उसके विद्यार्थी हो। परीक्षा के समय कठिन प्रश्न उपस्थित होने पर जैसे विद्यार्थी घबराता नहीं है और क्रोध करता है, किंतु शांति से उत्तर देता है। उसी प्रकार तुमको भी क्षमा की परीक्षा के समय शांति रखना चाहिये।

क्रोधी रोगी है। उसकी सम्हाल रखनी चाहिए। तथा उसे दवाई देना चाहिए। उससे शांतिमय वर्ताव करना यह तो सम्भाल रखने के समान है, और उस पर क्षमा भाव रखना यह दवा देने के समान है।

क्रोध करके तुम तुम्हारे आत्मा की हानि क्यों करते हो? क्रोध रूप राक्षस की रक्षा करने के लिए क्षमा रूप दैवी गुण का नाश किस लिये करते हो? कृत्रिम वस्तु के लिये क्रोध करके अपने शाश्वत आत्म गुण का नाश क्यों करना चाहिये? केशरीसिंह का विजय करने की अपेक्षा क्रोध पर विजय करना विशेष मूल्यवान है।

संसार मे "मित्ती मे सव्व भूएसु" सभी प्राणियों को मित्र मानने वाला किस पर क्रोध करे? जब अपने दांतों तले जीभ आ जाती है और पीड़ा हो जाती है, तब दांत उखाड़े नहीं जाते,

और ऐसा विचार भी करने मे नहीं आता। उसी प्रकार जब समस्त संसार को दांत के समान (मित्र) माना गया तो किस पर क्रोध किया जा सकता है ?

जब जाडे से बुखार आता है तो रजाई मे जैसे मुँह ढक कर सो जाते हैं. उसी प्रकार जब क्रोध रूपी बुखार चढे तब भी रजाई मे मुँह ढॅक कर सो जाना चाहिए। कारण कि यह बुखार तो महा दावानल उत्पन्न करने वाला विषैला आत्मघातक प्राणघातक बुखार है। क्रोध रूपी बुखार से स्वयं भस्म हो जाते हैं, किन्तु चेप लगाकर पास मे खडे हुए निर्दोष स्नेही को भी भस्म करता है। जैसे बुखार उतर जाता है तब ही शय्या का त्याग किया जाता है, उसी प्रकार क्रोध रूपी बुखार उतरे उसी समय ससार को मनुष्य के समान बनकर मुँह बताने योग्य होते है। नहीं तो रजाई मे मुँह डाल कर पडे रहना चाहिए, जिस से कि यह चेपी रोग अन्य को न लगे। प्लेग का चेपी रोग तो स्थूल है। उसकी अपेक्षा क्रोध का प्लेगी चेप अधिक सूक्ष्म है इसको असर क्षण मात्र मे होती है। अतः मानव समाज की दया पालने के लिए रजाई मे मुँह ढँक कर या एकांत वन मे जाकर के बैठ जाना चाहिए, जिस से कि कुटुम्बी जनों की एवं स्नेहियों की रक्षा हो सके।

जिस बात मे सार नहीं होता वह सुनने लायक नहीं होती, उसी प्रकार जिस मुखाकृति से क्षमा एवं शांति न टपकती हो वह ससार को मुख बतलाने योग्य नहीं रहता। तुम्हारे वचन से सामने वाले को आनन्द न हो तो ऐसे लजाने वाले शब्दों से भरे हुए मुख को काला क्यों न किया जाय ? जिस से संसार भी ऐसे चेपी रोग से चेते और मायाचार से बचे। अग्नि अगर अपनी विकरालता बतलाने में कपट करे तो संसार का नाश हो जाय। अग्नि की

स्पष्ट नीति मे शान्ति रहती है। उसी प्रकार तुम भी तुम्हारी क्रोधाग्नि से संसार मे शांति रखो। जिसके जीवन मे क्षमा एव शांति के मणके पिरोये हुए है वह स्वयं गुण मय माला स्वरूप आराध्य है। कोई अपने शरीर की सवारी बनाकर उस पर चंडाल को बैठने नहीं देता तो फिर महा चडाल क्रोध को अपने ऊपर सवारी क्यों करने दी जाय और जिस प्रकार हाथी अपने ऊपर रखे हुए हौदे (अम्बारी) से अपनी शोभा मानता है उसी प्रकार अज्ञानी महा चडाल क्रोध से अपनी शोभा में अधिकता मानता है, और उसकी खुशामद करके उसको आमन्त्रण देकर अपने पर सवारी कराके अपने आपको कृतार्थ मानता है। क्रोध करना यह अपनी नास्तिकता का परिचय कराने के समान है। आस्तिक प्राणी तो प्राणों का लोभ छोड़ कर भी क्षमा की रक्षा करता है। क्षमा युक्त एव शाति मय वचन बोलना यह हीरे और मोती की प्रभावना करने की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान है।

अग्नि की गोद मे तीक्ष्ण काटा भी राख हो जाता उसी प्रकार कषायी जीव भी क्षमावान के पास मुलायम रेशम बनता है। क्रोध राक्षसी प्रकृति है। क्षमा यह दैवी प्रकृति है। अग्नि कदाचित् किसी वस्तु को जलावे किन्तु क्रोध को एक बार बुलाओगे तो वह कुत्ते के समान बार २ आयेगा। तुम्हारे शरीर को क्रोध के दावानल मे से निकाल कर क्षमा के शीतल सरोवर मे रखो। कारण कि क्रोध के साथ ही साथ ईर्षा, द्वेष, अभिमान, अनुदारता, निर्दयता, कठोरता, हठीला स्वभाव आदि अनेक दुर्गुणों का हमला होता है।

क्षमा—

क्षमा मे ही सच्ची वीरता का समावेश होता है। यही सत्य दान है। अन्यदान तो पुद्गल के दान है, किन्तु क्षमा सर्वोपरि आत्म शक्ति का दान है। पशु का धर्म हिंसा करने का है और मनुष्य का धर्म अहिंसा करने का इसी प्रकार पशु का स्वभाव क्रोध करने का और मनुष्य का स्वभाव क्षमा करने का है। क्षमा याचक आत्म-कल्याण का परम इच्छुक है और वह क्षमा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देता है और क्षमा-धर्म की रक्षा करता है। सच्चा क्षमा वान अपने निमित्त किसी को भी क्रोध न करना पड़े इसकी पूरी सावधानी रखता है। क्षमा के कितने ही अवसर गँवाये, अत. यह विचार कर अपनी योग्यता का विचार करो। क्रोधी के क्रोध मय वचन शात भाव से सहन करना यह परम-सेवा है। क्षमा भाव रखना यह साधुता का लक्षण है। क्षमा रखना शत्रु से वैर लेने का उत्तमोत्तम उपाय है।

क्षमावान् सच्चा भाग्य शाली है। क्षमा के प्रकाश से उस का हृदय प्रकाशित होता है। क्षमा हाथ मे की तलवार है और क्रोध हाथ मे से छूटी तलवार है। क्षमा के अभाव मे विवेक और ज्ञान का भी अभाव होता है। पानी के पास अग्नि का जोर नहीं चलता, वैसे क्षमावान् के पास क्रोधी का जोर नहीं चलता है। वह तो उसे अपने जैसा बनाने के लिये भाग्यशाली बनता है।

१७—मान-विनय

मान—

मान यह आठ फण वाला सर्प है। आठ प्रकार के मद ये इसके फण है। अविवेक और द्वेष से मान का जन्म होता है। मान की माता अविवेकता और बाप द्वेष गजेन्द्र है।

जीव मान की मित्रता मे इतना जकड जाता है कि उसकी दुर्जनता को भूल कर उसको परम-स्नेही सज्जन के समान मानने मे आता है। मान की मित्रता से अयोग्य आत्मा अपने आप को योग्य एवं मूर्ख अपने आपको विद्वान् मानता है। मान मित्र के सहयोग से मनुष्य अपनी दृष्टि ऊँची रखता है। मान-मित्र का त्याग करने की सलाह देने वाले सज्जन को वैरी मानता है। मानी के लिए मानव-भव ठीक उसी प्रकार है जैसे कौवे की गरदन मे चिन्तामणि रत्न बांधना।

मान मीठा विष है अपमान कटु विष है कडुवे विष की अपेक्षा मधुर विष विशेष भयंकर है। राज्य पाट त्याग ने वाला भी मान के दलदल मे फंस जाता है। मनुष्य का अपमान उसी समय होता है जब वह अपना परम पद-परमात्म पद त्याग कर अपमान पाने के लिए तैयारी करता है। ऐसे साधन अपने पास उत्पन्न करता है।

अहंकारी का आदर कोई नहीं करता है। अपने मे दान, शील तप, भाव आदि गुण है-ऐसा भान होना भी अहकार है। जैसे निरोगी को स्वशरीर का भार अनुभव मे नहीं आता उसी प्रकार सद्गुणी, नम्र को भी अपने सद्गुणों का भान नहीं रहता।

दूसरे का अपमान करना यह अपना अपमान करने के समान है। सूर्य के सामने धूल फैंकने के समान है। मान अपमान के मात्र दो ही शब्दों मे म्लान होना इससे विशेष अन्य गुलामी क्या हो सकती है ? अपमान धिक्कार ने योग्य है। इससे विशेष अपमान को अपमान मानने वाला धिक्कार के योग्य है।

मान से बडप्पन एवं ईर्षा रूप पिशाचिनी उत्पन्न होती है। अग्नि से काष्ट का नाश होता है, इसी प्रकार मान से आत्म गुण का नाश होता है। मानी अपनी एक आँख फोड़ कर दूसरे की दोनों आँखे फोड़ने जैसी प्रवृत्ति करता हुआ अनुभव मे आता है अवलोकन करने से आत्म ज्ञान रहित मनुष्य की प्रवृत्ति बाग बगीचा, हाट, हवेली, गाड़ी, घोड़ा, मोटर, आभूषण विशाल प्रासाद जीमण, प्रभावना, दान आदि तमाम शुभ एव अशुभ प्रवृत्तियों मे मान के परमाणु अनुभव करने मे आते हैं

विनय—

विनय शील सदा शाति भोगता है। मानी के अन्तः करण मे सदा ईर्षा और क्रोधादि कषाय अग्निवत् सिलगते रहते हैं विनयी को सब सयोगों मे विजय प्राप्त होती है विनयी मान के सयोगों से दुःख मानता है, एव लघुता मे ही अपनी प्रगति करता है

सज्जन मे विनय हो तब दुर्जन में मान की मात्रा होती है सज्जन तथा दुर्जन की परीक्षा नम्रता तथा अहंता से हो सकती है। नम्रता की छाया सहनशीलता है, अहता की छाया कषाय है।

जहां नम्रता है वहीं अहिंसा है। जहा मान है वहां हिंसा है। नम्र को अपनी नम्रता का मान नहीं होता। मैं कुछ हूँ ऐसा मान होने से ही नम्रता का नाश होता है। नम्रता अर्थात् आत्यन्तिक अहभाव का अभाव। नम्र अपने को रजकण से भी तुच्छ मानता है। अपने पने का नाश ही नम्रता सज्जन की विभूति है। अहंता दुर्जन की विभूति है। सज्जन नम्र विनयी होता है तभी विश्व उसके चरणों पर पड़ता है। विनय और नम्रता सद्गुण रूप तथा अहंता एव अविनय दोष रूप समझा जावे तो भी अनेक पापों से बचा जा सकता है। अहंपद मे अविनय एव उच्छृंखलता है। विनय रूप समुद्र को सर्व गुण रूप नदियां बहती है और अविनय के समुद्र मे सर्व क्रोध रूप नदियां एकत्र होती है।

१८—माया

माया विचारती है कि मोहराजा की सेना मे सभी पुरुष हैं। किन्तु मैं ही मात्र अबला हुं। तो भी तमाम मोहराजा की संतानों मे मैं मेरे क्रोधादि भाइयों की अपेक्षा कन्या रूप अधिक बलवान् हूं। मेरे जैसी शान्ति मेरे किसी भी भाई मे नहीं है। समभाव और सरल-स्वभाव ये दोनों मेरे अनादि वैरी हैं। इनका नाश किये विना मुझे लेशमात्र भी चैन नहीं पड़ती। मात्र इनके नाश के लिए यह रात दिन प्रयत्न करती है।

सीधी लकड़ी मंदिर की चोटी पर ध्वजा दंड रूप मे शोभा देती है। और टेढी लकड़ी जलाने के काम मे आती है। इसी प्रकार प्रकृति की सरलता दोनों लोकों मे सुख देती है। वक्रता-माया-कपट मे दोनों लोकों मे दुःख मिलता है तथा दूसरों को भी साथ मे दुःख मिलता है।

क्रोधी के सामने क्रोध, मानी के प्रति मान मायावी के प्रति कपट करना यह विश्व मे दुष्टता की अधिकता करने के समान है। किन्तु क्रोधी क प्रति क्षमा मानी के प्रति विनय कपटी के प्रति सरलता रखना ही विश्व मे सज्जनता का बढ़ाना है। कपटी मनुष्य की गति, स्वर, बोली, रीति नीति, निद्रा, संस्थान और संयपण आदि पशु को शोभे ऐसे होते हैं और मरने के पीछे वे पूर्ण पशुता को प्राप्त करते हैं।

लोभ—

११ वां गुण स्थान वाले को क्रोध मान, माया आदि गिराने मे, अस्थिर करने में समर्थ नहीं है। किन्तु उसको ऋद्धि सिद्धि उत्पन्न होने से मुझे ये प्राप्त हैं ऐसी लोभ-प्रवृत्ति होने से पतन होता है। साधारण लोभ वृत्ति ११ वें गुणस्थान वाले को पतित कर देती है तो फिर दूसरे संसारियों की तो क्या दशा होगी? लोभ—वृत्ति क्षय कर दी होती तो मोक्ष होता, किन्तु उस वृत्ति को उपशांत रखने से पतन होता है।

लोभ और कजूसाई से शरीर के स्नायु तथा खून वध जाता है। और वह स्वतन्त्र रीति से वेग पूर्वक नहीं वह सकता। तुम्हारे शरीर के व मन के भी तुम स्वामी नहीं हो तो अन्य किसके स्वामी वनने की इच्छा करते हो? लोभ धन कमाने के सिवाय और कोई सलाह नहीं देता और वह नीति न्याय तथा सन्तोष का त्याग करने की वारम्वार प्रेरणा करता है। लोभी को धन मे ही विश्व का तत्व-धर्म परमात्म पद और मोक्ष का अनुभव होता है। लोभी धन प्राप्ति मे ही अपने जीवन की सफलता मानता है। शास्त्रकारों ने लोभ को सागर तथा आकाश की उपमा दी हुई है। सन्तोष ही इस जन्म मे तथा परलोक मे परम सुखदायी है।

१६—लोभ

ग्यारहवें गुण स्थानवर्ती आत्मा को क्रोध मान माया छिगाने समर्थ नहीं है, परन्तु उसे रिद्धि सिद्धि उत्पन्न होने से 'मुझे यह उत्पन्न हुआ है' इस प्रकार की लोभ वृत्ति होने से उसका पतन होता है। साधारण लोभ वृत्ति ११ वें गुण स्थान वाले को गिराती है तो अन्य की क्या दशा !

लोभ की वृत्ति क्षय की होती तो जीव का मोक्ष हो जाता। उस वृत्ति को उपशान्त रक्खी होने से जीवों का गहरा पतन होता है।

लोभ और कृपणता से शरीर के स्नायु और लोहू बंध होजाता है और वेग पूर्वक वह नहीं सकता। जो अपने शरीर और मन के स्वामी नहीं है वे अन्य किसके स्वामी हो सकते है? लोभ धन कमाने के अलावा दूसरी सलाह नहीं दे सकता और वह न्याय नीति तथा सन्तोष का त्याग करने की प्रेरणा वारंवार करता है। लोभी को विश्व का सार धर्म, परमात्मपद और मोक्ष धन में ही प्रतित होता है। शास्त्रकारों ने लोभ को महासागर एवं आकाश की उपमा दी है। लोभ का त्याग अर्थात् सन्तोष ही इस भव में और परभव में परम सुख का निधान है।

२०—आत्म संयम

आत्म ज्ञान, आत्म दर्शन और आत्म चारित्र द्वारा सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होती है। आत्म विजय ही महान् विजय है। आत्म विजय ही सत्य विजय है। विना आत्म विजय के क्षुद्रातिक्षुद्र गुलाम है। अपने हृदय के बागी प्रदेश पर विजय प्राप्त करे। इन्द्रियाँ और विषय वासना पर राज्य करे वही महाराजाधिराज है। अपने मन पर सत्ता चलाने वाला बड़ा सत्ताधीश है। अपने आंतर्साम्राज्य पर राज्य स्थापने वाला ही मानव बन सकता है। आत्म सयम ही समस्त गुणों की नींव है। आत्म विजय ही मानव का अन्तिम और महान् विजय है। शान्त संयमी बनो तो तुमारी सत्ता सब पर चलेगी। अन्य पर सत्ता चलाने की अपेक्षा अपनी आत्मा पर सत्ता चलाओ। आत्म सयम के अभाव मे सब सद्गुणों का अभाव होता है। अपने दोषों का नित्य निरीक्षण करने से वे दूर हो जाते है।

क्रोध पर काबू न कर सको तो जीभ बन्द करो। क्रोध आत्मा के सत्य स्वरूप का नाश करता है। क्रोधी मनुष्य का आयुष्य भी घटता है ऐसा वज्ञानिकों का मत है। मौन धारण करने से सब सन्ताप मिट जाते है। आत्म तत्व के नाश होने पर विषय कषाय की उत्पत्ति होती है। विना सयम का जीवन राक्षसी जीवन है। विषय कषाय आत्म गुणों का गला घोटते है। लोकाचार से सदाचार को अधिक मान देना चाहिये। विषय कषाय के संयोगो मे शान्त रह सके वही स्वतन्त्र है। जो मनुष्य आत्म स्वाधीन नहीं है वह पशु तुल्य अज्ञान और दया पात्र है।

२१—व्रत-प्रत्याख्यान

मनुष्य के हृदय मे जहां तक मिथ्यात्व का जोश कम न हुआ हो, वहां तक बाह्य पदार्थों की आसक्ति कम नहीं होती। इस लिए आस्रवों मे मिथ्यात्व की प्रधानता है।

जहां तक आत्मा का स्वीकार न हो वहां तक व्रत-प्रत्याख्यान को बिलकुल अवकाश नहीं है। आत्मा अमर है और आत्मिक सुखों से भरा हुआ समुद्र मेरे पास ही है, ऐसा दृढ़ निश्चय न हो वहां तक प्राप्त भोगों की सामग्री छोडने का दिल नहीं होता। जहा तक आत्मिक-सुख की प्रतीति रूप दृढ नींव पर व्रत प्रत्याख्यान की इमारत न खड़ी की जाय वहां तक वह इमारत ठीक नहीं हो सकती। आत्म-सुधार की भावना जितने अंशत मजबूत होती है इतने ही अश मे व्रत भी दृढ और कार्यकर बन सकते है। जहां तक मिथ्यात्व के तत्व होगे वहां तक व्रत-प्रत्ख्यान के उपदेश का असर नहीं हो सकता। रेत की नींव पर की हुई चुनाई अधिक नहीं ठीक सकती। जहा तक सम्यक्त्व भावना रूप शीशा आत्म विकाश की इमारत की नींव मे डाला न जाय वहां तक त्याग, प्रत्याख्यान क्षणिक समझने चाहिये।

व्रत-प्रत्याख्यान बाह्य स्थिति के बोधक तत्व नहीं है, किन्तु अन्तर अवस्था का प्रदर्शन कराने वाला है। व्रत प्रत्याख्यान शत प्रति शत आत्मा की अन्तर स्थिति है। बाह्य भेष को क्रिया काण्ड या व्रत-प्रत्याख्यान मानने वाले पूर्ण भूल करते हैं। विश्व के अन्य तत्व दूसरी वस्तुओं की तरह व्रत-प्रत्याख्यानों मे भी विकृति का सड़न प्रविष्ट हुआ है।

मानव के शारीरिक या आध्यात्मिक मार्ग मे त्याग-प्रत्याख्यान की परम प्रधानता रही हुई है। और त्याग-प्रत्यख्यान ही व्यक्ति,

समाज, प्रान्त, देश तथा विश्व का परम कल्याण कर सकते हैं। अन्यथा अधःपतन है।

त्याग—प्रत्याख्यान के नियम सिर्फ त्यागी वर्ग के लिए नहीं है, परन्तु जिसको अपने सत्य हित की कुछ भी दरकार है उन सब को सेवन करने योग्य है। मछली पानी बिना और भोगी भोग बिना तडफ कर मरते हैं, वैसे आत्मार्थी व्रत प्रत्याख्यान के अभाव मे या उसके भग मे मृत्यु का शरण लेते हैं। अनेक महासतियों ने और सुदर्शन जैसे श्रावक रत्नों ने व्रत-प्रत्याख्यान की रक्षा के लिये शूलो को सुख शय्या समझ कर सहर्ष स्वीकार किया। अम्बड सन्यासी के सात सौ शिष्यों ने व्रतों की रक्षा क लिये गगा नदी की उष्ण रेत मे अपने प्राण दिये। अरणक की माता ने अपने पुत्र को पत्थर की शिला पर पिघल जाने पर भी व्रत रक्षा करने की सलाह दी। इसके अतिरिक्त मेताराज, स्कन्धजी के पांच सौ शिष्य, गजसुकुमार, धर्म रुचि अणगार आदि अनेक महा पुरुषों ने व्रत-रक्षा के लिए अपने प्राण दिये हैं और सिर देकर अपने शील (व्रत) की रक्षा की है। लश्कर के सिपाही पाव भर आटे की लालच में तोप, बन्दूक, मशीनगन, बम्ब के सामने खुली छाती से खडे रहते हैं तो आत्मसुख के अभिलाषियों को अपने व्रत आदि के लिये कितना महान् आत्म भोग देना चाहिये यह सहज समझा जा सकता है।

मनुष्य व्रत—प्रत्याख्यान के अभाव मे व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज देश या प्रजा का कल्याण नहीं कर सकता है। त्याग-प्रत्याख्यान की विशेषता के प्रमाण मे वह अच्छे से अच्छा गृहस्थाश्रम चला सकता है, अन्यथा गृहस्थाश्रम चलाने मे असमर्थ होता है। सदनी जीवन के अभाव मे मनुष्य गृहस्थ जीवन से भी पतित होता है

सन्तान के श्रेय के लिए मात पिता का त्याग और आत्म भोग सुप्रसिद्ध है। त्याग के कारण ही मातृ पितृ पद निभ रहा है— अन्यथा स्थान भ्रष्ट हो।

त्याग—प्रत्याख्यान के शरण बिना उत्तम गृहस्थ भी नहीं हो सकते है तो त्यागी कैसे हो सकते है? भोगोपभोग के प्रति संयम रखने से ही आदर्श गृहस्थ धर्म या त्यागी धर्म पलता है।

कुटुम्ब भावना से आगे समाज, देश और विश्व भावना के लिए क्षेत्र के प्रमाण से विशेष त्याग-प्रत्याख्यान की आवश्यकता है। वर्तमानमे त्याग-प्रत्याख्यान का अर्थ अति संकीर्ण और कर्त्तव्य प्रदेश मे प्रायः निरूपयोगी जैसा हो गया है। खान, पान तथा आने जाने की मर्यादा मे व्रत-प्रत्याख्यान मान लिए जाते है, परन्तु जिसका असर जीवन के प्रत्येक प्रदेश और प्रवृत्ति मे हो वही सच्चा त्याग है। जिस त्याग का फल प्रत्यक्ष नहीं है, परोक्ष मे मिलेगा यह आशा निरर्थक है। भविष्य मे फल प्रद होने वाले प्रत्येक कार्य वर्तमान मे भी उसकी आगाही दिये बिना नहीं रहते। जिस त्याग का परिणाम वर्तमान जीवन पर नहीं पडता और आचार विचार पर जरा भी असर नहीं करता उसके सेवन से मनुष्य कुछ भी उदार, उच्चाशयी या निष्कामी नहीं होगा। वह त्याग बिना समझ का या त्रुटि पूर्ण समझना चाहिये। यह भूल न सुधरे वहा तक त्याग-प्रत्याख्यान कष्ट मात्र है। इससे कोई उत्तम फल की आशा नहीं रहती।

त्याग—प्रत्याख्यान के प्रताप से मनुष्य पशु से आगे बढ़ता है और जितने अंश मे त्याग प्रत्याख्यान बढ़ाता है, इतने अंश मे वह विशेष रूप से शुद्ध मनुष्य बनता जाता है और मानवता के गुणों को विकसित करता है।

व्रत-प्रत्याख्यान आत्मा की पांखे हैं। जिस के द्वारा वह योग्य दिशामे आकाश गमन कर सकता है। उसके अभाव मे मृत्यु लोक मे विषयी कीडा बनकर पेट घीस कर जमीन पर रेंगता है। और पद्पद् पर पश्चाताप व शोक करता है। त्याग-प्रत्याख्यान के अभाव मे अधम वासनाओं की प्रबल इच्छा होती है। और भोगोपभोग के लिए पशु को भी लज्जित कर ऐसी वूम मारता है। इससे क्रमशः मृत्यु पहिले ही वह अर्ध पशु बनता है और भोग वासनाओ को पूर्ण करने के लिए मृत्यु के बाद पूर्ण पशु बनता है। पशु या मानव मां बाप का अपनी सन्तान के लिए त्याग या आत्मभोग महर्षियों के त्याग से भी अधिक है। सन्तान के जीवन मे अपना जीवन और सन्तान के मरण मे अपना मरण मानते हैं। अन्तिम श्वासो श्वासतक सन्तान के श्रेय की चिन्ता करते हैं। खान पान और भोगोपभोग मे सन्तान के श्रेयके लिए शुष्क और सादगी का जीवन बीताते हैं और विशेष मे इस लोक के सुख की परवाह तो नहीं करते, परन्तु परलोक के सुख को धर्म नीति और न्याय को भी लात मार कर मानव जीवन का ध्येय सन्तान की सेवा बनाते हैं।

२२—चारित्र

आत्मा के निजी स्वरूप मे चलना सो चारित्र हैं। मनुष्य चाहे जैसा अपना चरित्र बना सकता है। साधु श्रावक वर्ग की स्थापना चरित्र शुद्धि के लिये ही है। व्रत प्रत्याख्यान चारित्र बनाने का हथियार है। जैन दर्शन चारित्र विकशित करने की शाला है। शरीर सुधारने के लिये जैसे दवाखाने और डाक्टर है, वैसे ही जीवन सुधार ने के लिये धर्म स्थानक और धर्मगुरु है। चारित्र अपने तनमन की अवस्था मात्र है।

सबल और निर्बल मनुष्य मे यही अन्तर है, कि सबल अपने चारित्र को इच्छानुसार बना सकता है और निर्बल आस पास के सयोगों के आधीन हो जाता है। उसे कोई गुस्से भी कर सकता है और खुश भी कर सकता है उसका मन मोमकी तरह नर्म और सयोगो के आधीन होता है। वह अपने मनका मालिक नहीं है, परन्तु सयोगो के आधीन पामर प्राणी है।

आत्मा मन का मालिक है। जैसे व्यायाम से शरीर को सुदृढ़ बनाया जाता है, वैसे ही आत्मा मन को बलवान और उत्तम बना सकती है।

जिनके चारित्र को सैकड़ों प्रकार से सुधारना बाकी है, ऐसे मनुष्य भी दूसरों को सुधार की सलाह देने लग जाते हैं। जैसी सलाह वे दूसरे को देते है, यदि वैसा बर्ताव वे खुद करें तो वे स्वयं शीघ्र सुधर सकते है। मगर सलाह देने वाले को अपनी सलाह मे ही विश्वास नहीं, तो दूसरो को उसकी सलाह मे विश्वास या सन्मान कैसे उत्पन्न हो सकता है? बिना गोली की बन्दूक कितने ही

आवाज करें तो भी वह आवाज एक पत्ते को भी नहीं तोड सकती, वैसे ही विना चारित्र का उपदेश असर नहीं करता।

विना खात व पानी के पौधा सूख जाता है, वैसे ही वासनाओं को विषय पोषण मिलना बंध हो तो वे मर जाती है। सिर्फ एक वक्त वासना के गुलाम बनें तो अनन्त काल तक उसकी विजय रहेगी। और एक वक्त वासनाओं को हरा दी तो सदा के लिये आप की विजय रहेगी। कई मनुष्यों को अधम वासना के सिवाय चैन नहीं होता, इसी प्रकार ऐसा अभ्यास किया जा सकता है कि उत्तमता के विना चैन न पडे।

चिन्तन से रस (तन्मयता) प्राप्त होता है और कार्य करने से श्रद्धा प्राप्त होती है. विना कार्य के मात्र दृष्टान्त दलील और वांचन से श्रद्धा नहीं आती मात्र कार्य करने पर ही वह प्राप्त होती है। जितनी श्रद्धा अधिक होती है उतनी ही चारित्र की पवित्रता अधिक होती है। श्रद्धा ही मन रूपी सडक को साफ करती है, प्रतिबंधों का नाश करके सरलता करती है और विघ्नो के प्रसंग में आत्मा को धीर और स्थिर रखती है। श्रद्धा चरित्र की नींव है। भूतकालीन संस्कार और आदतों से चारित्र बनता है, चारित्र का परिवर्तन आदतों का परिवर्तन है। आज का सीखा हुआ पाठ समय पाकर दृढ होना है यही स्थिती चरित्र की है।

अहिंसा, सत्य क्षमा ब्रह्मचर्य सरलता सन्तोष आदि आदत रूप बन जाय, जीवन में एकाकार हो जाय, इसी लिये इतना विधान फरमाया है और यही सत्य चारित्र है।

२३—आत्म संयम

आत्म ज्ञान, आत्म दर्शन और आत्म चरित्र के द्वारा ही सर्वोपरि सत्ता प्राप्त होती है। आत्म (इन्द्रियों का) विजय ही सर्वोत्कृष्ट विजय है, सत्य विजय है। इसके सिवाय अन्य विजेता क्षुद्र गुलाम हे। अपने हृदय के बागी प्रदेश पर विजय प्राप्त करें। इन्द्रियाँ और विषय वासना पर शासन करने वाला ही महाराजा है। अपने मन पर सत्ता चलाने वाला महासत्ताधीश है। अन्तः साम्राज्य पर राज्य स्थापने वाला मानव बन सकता है। आत्म संयम समस्त गुणों की जड है। आत्म विजय मनुष्य का अन्तिम और महान् विजय है। शांत बनने से सब पर सत्ता चल सकेगी। दूसरो पर सत्ता चलाने की अपेक्षा अपने पर सत्ता चलाना सीखो। आत्म संयम का अभाव है वहाँ सब सद्गुणों का अभाव समझना चाहिये। अपने दोषों का नित्य अवलोकन करने से दोष दूर होते हे।

अपने क्रोध को वश में रख न सको तो जीभ को तो अवश्य वश रखना सीखो। क्रोध आत्मा के शुद्ध स्वरूप का नाश करता है। क्रोधी मनुष्य का आयुष्य भी अल्प होता है। मौन धारण करने से सब सन्ताप मिटते हैं। आत्म तत्व के नाश से ही विषय कषाय की उत्पति होती हे। बिना संयम का जीवन राक्षसी जीवन है। विषय कषाय आत्मगुणों को फांसी देकर मारते हैं। लोकाचार की अपेक्षा उच्च आचारों को विशेष मान देना चाहिये। विषय कषाय के सयोगों मे शांत रहे वही स्वतन्त्र है। जो मनुष्य स्वाधीन नहीं है वह पशुतुल्य अज्ञान और दयापात्र है।

२४–जैन धर्म व अजैन संसार

जैन धर्म अनादि काल का है। यह बात निर्विवाद तथा मत भेद रहित है। (लोकमान्य-तिलक)

मनुष्यों की उन्नति के लिए जैन धर्म का चारित्र बहुत लाभदायी है। यह धर्म बहुत असली स्वतंत्र, सरल और विशेष मूल्यवान् है। (डॉ० ए० गिरनाट, पेरिस)

कैसे उत्तम नियम और उच्च विचार जैन धर्म और जैन आचार्यों में है। (डॉ० जोहन्नेस हर्टल, जर्मनी)

जैन धर्म ऐसा प्राचीन धर्म है कि, जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास को ढूंढना अति दुष्कर है। (लाला कन्नूमलजी)

निःसंशय जैन धर्म ही पृथ्वी पर सत्य धर्म है और यही धर्म मनुष्य मात्र का आदि धर्म है। (मि० आवे जे ए. वाइ. मिशनरी)

मैं जैन सिद्धान्तों के सूक्ष्म तत्त्वों का पूर्ण प्रेमी हूं। (मुहम्मद हाफिज सैयद)

मुझे जैन तीर्थंकरों की शिक्षा के लिए अतिशय भक्ति है। (नेपालचन्द)

मुझे जैन सिद्धान्त का अत्यन्त शौक है, कारण कि कर्म सिद्धान्तों का इस में सूक्ष्म रीत्या वर्णन किया है। (एन० डी० पाण्डे, थियोसोफिकल सोसायटी)

महावीर ने एक आवाज से हिंद में ऐसा सन्देश फैलाया कि धर्म साम्प्रदायिक रूढ़ी नहीं है, परन्तु वास्तविक सत्य है। (रवीन्द्रनाथ टागोर)

जैन धर्म की उपयोगिता को सर्व रूपेण पाश्चिमान्य विद्वानों को स्वीकारना चाहिए। (डॉ० जौली, प्रॉफेसर जर्मनी)

भारत वर्ष मे जैन धर्म की प्रधानता रही वहां तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य था।

जिनेश्वरों ने उपदेश दिया है, उसे ध्यान पूर्वक सुनो। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि, ससार के सर्व मनुष्य उनके उपदेश अनुसार अपना जीवन व्यतीत करे। (श्रीमती एनी बीसेन्ट)

जैन धर्म के श्रावक तथा मुनि दोनों का चरित्र मनुष्य मात्र के लिए आदर्श रूप है। (गगाप्रसादजी एम ए)

मै आपको कहां तक कहूँ ? बडे २ प्रसिद्ध धर्माचार्यों ने अपने ग्रन्थों मे जैन धर्म का खंडन किया है, वह ऐसा है कि, उसे देखकर हास्य छुटता है। स्याद्वाद का यह (जैन धर्म) अभेद्य किल्ला है। उसमे वाद विवाद करने वालो का माया मय गोला प्रवेश नहीं कर सकते। एक दिन ऐसा था कि, जैन धर्माचार्यों के प्रवचन से सर्व दिशाएँ गुंज रही थीं। जैन दर्शन वेदान्त दर्शन से भी प्राचीन है, ऐसा मानने मे मुझे कोई हर्ज नहीं है।

(प० स्वामी राममिश्रजी शास्त्री)

ब्राह्मण धर्म को जैन धर्म ने ही अहिंसा धर्म बनाया। हिन्दू धर्म मे जैन धर्म के प्रताप से ही मांस भक्षण तथा मदिरा पान बन्द हुआ। (लोकमान्य तिलक)

गरीब प्राणियों का दुःख दूर करने के लिए जर्मनी मे अनेक सस्थाएँ वर्तमान मे चल रही है, परन्तु जैन धर्म यह कार्य यह

कार्य हजारों वर्षों के पहिले से ही करता आ रहा है।

(मि० जोहन्स हर्टल, जर्मन)

जैनधर्म मे अहिंसा तत्व अत्यन्त श्रेष्ठ है।

(रा० गोविंद आप्टे बी० ए०)

जैन धर्म के महत्व पर मेरी हार्दिक श्रद्धा है।

(गंगाप्रसादजी मोहता एम० ए०)

मेरे चित्त मे जैन धर्म प्रति अत्यन्त आदर है। पूर्व कालीन स्थिति मे हिंदू समाज मे अनेक बुराइयाँ आ घुसी थी। जिसका सुधार जैन धर्म ने ही किया है। जैन धर्म मे अहिंसा का यथार्थ स्वरूप प्रति पादन किया है। जैन राजाओं ने व गृहस्थों ने महान् पवित्र कार्य किये हैं और महान् विजय प्राप्त किये हैं। जैन धर्म की शिक्षा मे सामाजिक जीवन भी पूर्ण हो सकता है। हिन्दू मात्र को जैन धर्म का कृतज्ञ होना चाहिए, चूंकि उस धर्म ने हिंदू समाज की अनेक बुराइयों का संशोधन किया है।

(प्रॉ० चतुरसेन शास्त्री)

जैन धर्म सुख और शान्ति प्राप्त करने का साधन है। भगवान् महावीर का उपदेश ज्ञान मय तथा चारित्र सुधारने वाला है प्राणी मात्र पर दया का सिद्धांत अमूल्य सिद्धांत है।

(प० शीभूषण एम० ए०)

अन्तिम निवेदन
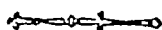
अध्यात्म रसिक आत्मार्थी मुनि श्री मोहन ऋषिजी म० सा० व विवेक सम्पन्न मुनि श्री विनय ऋषिजी म० सा० भ्रातृद्वय को जैन मात्र भली प्रकार जानते है। सिर्फ ऋषि सम्प्रदाय के ही नही, समस्त जिनशासन के आप हितचिंतक और शासन शृंगार है। श्री बृहत्साधु सम्मेलन अजमेर के समय की आपकी सेवाए व खास उल्लेखनीय और प्रमुख थी।

आपके विचार बडे मनन, चिंतन और अध्यात्मानुभव के साथ प्रकट होते है। स्व० पूज्य श्री अमोलख ऋषिजी म० सा० का सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'जैन तत्व प्रकाश' का गुजराती अनुवाद मे स्थान २ पर फूट नोट देने के लिए आत्मार्थीजी ने कुछ विचारो को लिपि-बद्ध किये थे, जिसको 'जैन प्रकाश' ने 'जैन तत्त्वोनु नूतन निरुपण' के हेडिंग से नीचे गुजराती मे प्रकट किया था।

यह नूतन निरूपण नूतन युग के विचारको को बहुत उपयोगी मालुम पडे और पुस्तकाकार साहित्यरूप मे प्रकट करने का आग्रह हुआ। अतः दानवीर सेठ सरदारमलजी सा० पुंगलिया ने हिंदी मे छपवाने की अपनी हार्दिक भावना प्रकट की और इसका अनुवादन आदि कार्य के लिए मुझे कहा गया।

मैं चाहता था कि ऐसा उत्तम स्थायी साहित्य हिन्दी के प्रखर लेखक के द्वारा प्रकट हो, परन्तु पुस्तक शीघ्र प्रकाशित करनी थी अतः अनुवादन कार्य मुझे करना पडा। शीघ्रता के कारण अनेक त्रुटियां होगी। पाठकगण उसे क्षमा करें और आत्मार्थी जी के भावों को महत्ता समझकर अपना जीवन सुधारें।

धीरजलाल के. तुरखिया.